UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182245

UNIVERSAL
LIBRARY

फांसी !

विक्टर ह्यूगो की Sentence to Death नामक
पुस्तक का अनुवाद

अनुवादक
श्री कृष्णकुमार मुखोपाध्याय

हिन्दी मन्दिर, प्रयाग
सर्वोदय साहित्य मन्दिर
हसैनीआलम रोड, हैदराबाद (दक्षिण)

प्रकाशक,
हिन्दी मन्दिर,
प्रयाग।

छठी बार : १९४६
मूल्य
एक रुपया

मुद्रक,
अमरचन्द्र,
राजहंस प्रेस, दिल्ली।

फांसी !

: १ :

फांसी !

पाच हफ्ते से केवल यही चिन्ता कर रहा हू। दिन-रात मैं अकेला रहता हू। अकेला ही मृत्यु का ठडा स्पर्श अनुभव कर रहा हूं। मेरे गले को मानों किसी ने रस्सी से बाध रक्खा है।

लेकिन हमेशा से मैं ऐसा नही था। अभी बहुत दिन न हुए होंगे, मैं भी एक साधारण मनुष्य की भाति ही स्वतन्त्र था। प्रतिदिन, प्रति घण्टे, प्रति मुहूर्त्त मैं स्वाधीन रहता था। मेरा मन भी ऐसा ही स्वाधीन था। मेरा तरुण निर्मल मन एक नशे में विभोर रहता था। नियमहीन, शृङ्खलाहीन, बाधाहीन जीवन की कल्पना मुझे उन्मत्त बना देती थी।

सुन्दरी किशोरिया, जय-पराजय, आनन्द और उज्ज्वल रग-शालाये, सन्ध्या की छाया में सुकुमारियों के बाहु-बन्धन मे स्वप्नमय परिक्रमण—ऐसे ही सुख के साथ मेरे दिन कटते थे। चिन्ता की गति थी स्वाधीन, और स्वय तो स्वाधीन था ही !

परन्तु आज ! आज मैं कैदी हू। साकलों मे जकड़ा हुआ, क़ैदखाने का रहने वाला कैदी हू। मन के भीतर भी वैसा ही अन्धकार

है, जैसा कि कैदखाने के अन्दर। एक भीषण निष्ठुर [illegible] की कालिमा मुझ को घेरे हुए है। अब और कोई चिन्ता मन मे नही उठती। केवल एक चिन्ता दिन-रात मन मे जाग रही है—फासी की रस्सी से मेरा प्राण-दण्ड!

अशरीरी छाया की भाति यही चिन्ता मुझे घेरे हुए है। और किसी बात को सोचने का अवसर ही कहा? मैं तो चाहता हू कि मैं भूल जाऊ—परन्तु, हाय, सब व्यर्थ है। उसके कठिन स्पर्श से एक मिनिट को निस्तार नहीं मिलता।

लाल आखे निकालकर मानों दिन-रात वह मेरी ही ओर देख रही है। मेरे चारों ओर न जाने कौन विषाद-रागिनी गाता रहता है और कभी-कभी किसी की तीव्र हसी बिजली की भाति मेरी आखों के सामने खिल उठती है। कारागृह की खिड़की के उधर—ऐ [illegible]। वे किसकी आखे हैं? मौत की। प्रेत की भाति वह मेरे चारो ओर घूम रही है। हाथ मे रस्सी [illegible]। न; मैं पागल हो जाऊगा।

अकस्मात् नींद टूट गई—मालूम हुआ है, किसी ने अभी-अभी मेरे मुख पर से अपनी दृष्टि हटा ली। क्या यह स्वप्न है? जेलखाने के कठिन पत्थरों पर, दीप की क्षीण शिखा मे, पहरेदारों की नीरव मूर्ति मे खिड़की के किनारे-किनारे—न जाने कौन घूमता रहता है। उसकी जबान पर केवल वही एक शब्द—फासी!

: २ :

अगस्त का महीना है। निर्मल, स्निग्ध और सुन्दर प्रभात है। आज तीन दिन हुए, मेरे मुकदमे का विचार शुरू हुआ है। इन्ही तीन दिन के अन्दर मेरा नाम चारो ओर मशहूर हो गया है। आलसियों के दल—जिन्हे काम से एक मिनट की फुर्सत नहीं मिलती—आज मुझे देखने के लिए अदालत के आगन मे भीड़ किये खड़े हैं। मृत-देह के चारों ओर जिस प्रकार गिद्ध लोलुप-दृष्टि से डटे रहते हैं, उसी प्रकार वे भी मेरे लिए आज चचल और अधीर हो रहे हैं।

पहरेवालो का यह वीर-दर्प और दर्शकों की इस प्रकार की निरीह मूर्ति, ओह, यह मुझे असहनीय मालूम होता है।

पहली दो रात तो मुझे नीद ही नही आई। हृदय मे एक व्याकुल आर्तनाद का अनुभव होता रहा। यह गभीर आशका किस की थी? तीसरी रात को क्लान्त होकर निद्रा का मोह-स्पर्श पहले-पहल अनुभव किया। आवेशमयी निद्रा—आह, वह सब व्यथा को भुला देती है। पहरेदार की आवाज से नींद खुल गई। पैर मे भारी जूता, हाथ में चाबियों का गुच्छा—ऐसा लगता था, मानो यमदूत हो!

मैने आखों को मसलकर चारो ओर देखा। कारागार की मजबूत काली दीवार! छत के नीचे हवादान मे मे आसमान का कुछ हिस्सा नजर आया। सूर्य का प्रकाश उस आसमान पर खिल रहा था। सचमुच मै इस प्रकाश को अत्यन्त प्यार करता हू।

मैने कहा, "ओह! कैसा सुन्दर दिन है!"

पहरेदार चुप रहा। मेरी बात का उत्तर देना शायद उसने जरूरी न समझा। फिर अकस्मात् न जाने क्या सोच कर उसने उत्तर दिया, "हा, बड़ा सुन्दर दिन है।" पत्थर की भाति मैं निश्चल, निष्पन्द हो गया। चेतना लुप्त हो गई। मै उसी हवादान की ओर देखता रहा। फिर कहा—"ओह, बड़ा सुन्दर सवेरा है।"

उसने कहा—"हा। लेकिन बाहर तो तुम्हारा सब इन्तजार कर रहे हैं।"

उसका यह उत्तर। मकड़ी के जाल की भाति इस उत्तर ने मुझे पुरानी चिन्ता के जाल मे घेर लिया। इसी समय मेरी आख के सामने खड़ा हो गया—वह निर्मम, हृदयहीन रक्त का प्यासा विचारक, उसका अप्रसन्न गम्भीर मुख और लोभी गवाहों का दल, काले गाउन मे पण्डित वकीलगण, चित्र की भाति सज्जित पहरेदार, चपरासी और वह आवारा दर्शको का समूह!

मेरी सारी देह मे आग लग गई। बदन कापने लगा। पैर भी काप रहा था। पहरेदार मुझे पकड़ कर बाहर खींच लाया। बाहर की हवा से बहुत-कुछ शान्ति मिली और दुश्चिन्ता मिट गई। सिर के ऊपर विस्तृत नीला आकाश—ठण्डी धूप का मधुर स्पर्श, चारो ओर

पक्षियों का कलरव, दूर पर पेड़ों की छाया—अहा ! यह ससार इतना सुन्दर है, यह आज ही मालूम हुआ।

उसके बाद फिर कचहरी की दम घोटने वाली हवा। जीवन के बाद मृत्यु,—वह भी शायद ऐसी ही भीषण होगी। मुझे देखते ही चारों ओर कुछ शोर-सा होने लगा। काना-फूसी, कागजों की खरखर आवाज, जूतों की चरमराहट, इन सबके मिलने से एक अजीब ही तरह की मिश्र-रागिनी की सृष्टि हो गई। मुझे देखने के लिए अबतक सब धीर भाव से प्रतीक्षा कर रहे थे। मेरे आते ही उनको कुछ आराम मिला। कैसी निर्लज्ज हृदयहीनता ! एक आदमी की फासी का हुक्म सुनने के लिए इन पशुओं को कैसा कुतूहल !

चारो ओर शान्ति निस्तब्ध। आधी आने के पहले प्रकृति जिस प्रकार शान्त हो जाती है, ठीक उसी भाति। अभी आधी आवेगी ! एक भयानक आधी आवेगी। मेरी हड्डियों को पीस कर, नस-नस को चबा कर, जीवन को सहस्र खण्ड मे विदीर्ण कर तब यह आधी ठहरेगी। आज मेरे अपराध का दण्ड-विधान होगा।

दण्ड ! कौन किसको दण्ड देगा ? कौन किसके अपराध का विचार करेगा ? मैं चुपचाप खड़ा हुआ इन्तज़ार कर रहा था। हृदय रह-रह कर काप उठता था। कैसा गम्भीर विराट स्पन्दन था। उसका धक्-धक् शब्द शायद बन्दूक के शब्द से भी अधिक भयानक था।

मेरे मन मे उस समय कोई भय नहीं था। कमरे की खिड़की खुली हुई थी। मै आकाश की ओर देख रहा था। वहा असख्य छोटे-छोटे पक्षी उड़ रहे थे। शान्त और मधुर हवा, माता की भाति

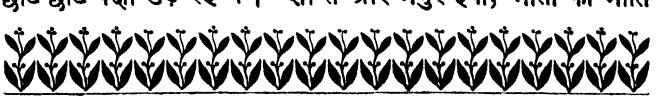

ही मेरे ललाट पर अपना शीतल हाथ फेर रही थी। जज की आखें मानो नीद से भरी हुई थीं। उस ओर नजर पड़ते ही मै सोचता था, "यह अभिनय क्यो ?"

बाहर दूकानदार लोग हस रहे थे। उन्हें मेरा ख्याल ही नही। वे अपनी ही इसी और बातों में मग्न हैं। इसी और बातों से उन्हें कभी फुर्सत नहीं मिलती। कैसे निर्बोध हैं ये दूकानदार लाग ! मूर्ख हैं !

चारो तरफ इतना आनन्द ! इतनी शोभा ! इस समय मृत्यु की बात सोचना निठुरता है—पाप है। यह स्निग्ध वायु, ऐसी दिव्य उज्ज्वल प्रसन्न सूर्य-किरण। इस समय मृत्यु की चिन्ता—कैसी अशोभनीय बात। सूर्य-किरण की भाति आशा की घटा कभी-कभी निराश हृदय मे प्रकाश डाल रही थी—आह। यदि आज मैं मुक्त हो जाऊं।

मेरे वकील न कहा, "उम्मीद।"

कुछ हस कर मैंने उत्तर दिया—"अच्छी बात है।"

वकील ने कहा, "मैंने सिद्ध कर दिया है कि घटना अकस्मात् हो गई—फासी तो हो ही नहीं सकती, हा, आजन्म कारावास—खैर, देखें क्या होता है।"

मैंने कहा—"क्या, कारागार मे जन्म भर के लिए बन्दी ? नहीं, उससे तो मौत ही अच्छी है।"

हा, मौत भी अच्छी है। मैंने बाहर की ओर देखा। एक पक्षी डाल पर बैठ कर फल को ठुकरा रहा था। कितना आनन्दी जीव है वह। मैं यदि वैसा ही एक पक्षी होता। वैसा ही मुक्त और स्वाधीन होता !

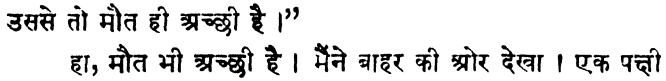

जज उस समय अपनी राय पढ़ रहे थे। मेरा ध्यान उस ओर नहीं था। जीवन और मृत्यु की बात तो मैं उस समय भूल ही गया था। सहसा कान मे आवाज आई—'फासी'। सिर मे पसीना आ गया। आखों के सामने काला पर्दा गिर पड़ा। मै उस कठघरे से टिककर खड़ा हो गया। शायद जज को कुछ दया आई। उसने पूछा, "तुम्हें कुछ कहना है?"

कहने को तो बहुत कुछ था। परन्तु बात बढाकर फायदा ही क्या था? और जबान पर मानो ताले पड़ गये थे। दोनो हाथो से मैंने अपने मु ह को ढक लिया। लोग शोर करते हुए कोर्ट के बाहर जा रहे थे। उनके पैरों का शब्द सुनाई दे रहा था। ओफ, अब उनको कुछ चैन मिला है! काम-काज, विलास-विश्राम सब छोड़कर जो मेरे लिए इतनी दूर आने का कष्ट उठाते थे, मैंने उनको छुट्टी दे दी! वे खुश होकर चले गये।

बहुत देर बाद मेरे मु ह से बात निकली। मैंने कहा—"हुजूर, केवल इतनी दया करे कि फासी जल्दी हो जाय, बस और कुछ नही।"

सारे संसार पर मुझे क्रोध आ गया। वह सदा की भाति ही हंसता रहेगा, आनन्द करता रहेगा। मैं उसको खाली कर जाऊगा, परन्तु वह इसका अभाव अनुभव नही करेगा। हाय, ऐसी सुन्दर पृथ्वी, परन्तु ऐसी निर्दय है। किसी के लिए उसके हृदय मे स्नेह नहीं, ममता नहीं, मानों निस्पन्द और कठोर एक जड़-पिण्ड है। यही ससार है और इसी ससार मे किसी प्रकार टिके रहने का नाम जीवन है! इससे मृत्यु, हा, वह क्या इससे अधिक कठोर है?

पहरेदार मुझे बाहर ले आये। बाहर दर्शको का दल उस समय भी मुझे देखने के लिए उन्मत्त था। अरे, इन सब हृदयहीन पशुओं के सिर पर बिजली नही गिरती? कैसे प्रेत हैं। पिशाच हैं!

बाहर आकर देखा, कैसा परिवर्तन है! जब इधर से होकर कोर्ट की ओर आया था, उस समय मैं भी और सबो की तरह जीवित था। और अब? अब तो मानों मेरी मृत-देह को कोई खीचे ले जा रहा है। अब मानों मै इस ससार का कोई नहीं हूं। पक्षियो का गान, सूर्य की किरणे—ये आज मेरे नहीं हैं। नदी का स्निग्ध जल, नीला आसमान और सबो के लिए तो ठीक वैसा ही है, केवल मैं ही इनमे से चला गया हू। वे छोटे-छोटे फूल, पेड़ की वह छाया, हाय, वे मेरे लिए नही हैं! इन सब पर आज मेरा कोई अधिकार नहीं है।

काले रग की गाड़ी मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। मैं जब गाड़ी मे चढने लगा तो दूर पर कोई कह रहा था, "उसको फासी का हुक्म हो गया" मैने उसकी ओर फिर कर देखा। एक व्यर्थ आक्रोश हृदय मे धधक उठा।

गाड़ी चली। मैं उसके भीतर के एक छोटे से छेद मे से बाहर के ससार को देखता जा रहा था। सड़क पर आदमी चले जा रहे हैं—खासी चहल-पहल मची हुई है। उसमें कुछ भी फर्क नहीं आया है। मेरी मृत्यु से इन की कोई हानि नहीं है, कोई सहानुभूति नही है। हाय रे मनुष्य!

: ३ :

मृत्यु !

किन्तु हानि भी क्या है ? मनुष्य हमेशा तो जीवित नहीं रहता। एक दिन तो मरेगा ही। वह दिन और वह क्षण ही उसको अज्ञात है। बस, केवल इतना ही तो फर्क है। फिर क्यों मै व्यर्थ ही घबरा रहा हू ?

आज से लेकर फासो के दिन तक कितने ही आदमी ससार छोड जायगे। मेरी फासी देखने के लिए जो लोग दिन गिन रहे हैं, उनमें से भी कितने ही चल बसेगे। फिर मैं अपने जीवन पर इतनी ममता क्यो कर रहा हूं ?

प्रकाश और हवा से न्यारा यह जेलखाना, कदर्य आहार, निस्सग जीवन, अपमान-पीड़ित हृदय, असभ्य और निष्ठुर पहरेदार —हाय, इस जीवन से लाभ ही क्या ? ससार मे मेरे लिए करुणा का एक बू द आसू भी नहीं है। मैं रिक्त हू, भिखारी हू ! मेरी नाव की पतवार टूट गई। इस जीवन से क्या लाभ ?

काले रग की बन्द गाड़ी मुझे जेलखाने मे ले आई।

पहले जब जेलखाने को देखता था तो यह भारी मकान कुछ

ऐसा बुरा न मालूम होता था। न जाने कितनी बार उसी जेलखाने के सामने वाले मैदान पर बैठकर गीत गाये होंगे। मित्रो से गप्प लड़ाई होगी। किशोर जीवन के उन्मत्त उल्लास और आनन्द की स्फूर्ति के साथ चन्द्रालोक में बैठकर इसी मैदान मे अपने भविष्य-जीवन के मसूबे बाधता था। कितनी उद्दाम कल्पनाये करता था! देखने में राज-प्रासाद-सा विशाल यह मकान, पास ही छोटी-सी नदी बह रही है, मानों एक सुन्दर चित्र है। लेकिन आज इसको देखने से भी हृदय घृणा से संकुचित हो उठता है।

मेरा कमरा। उसमे खिड़की नहीं है, केवल लोहे की छड़े हैं। बड़ा भारी लोहे का दरवाजा है, और चारों ओर पत्थर की दीवारे हैं। कहीं भी सौदर्य का चिह्न नहीं है। और स्नेह! वह तो यहा से कोसों दूर है।

: ४ :

पत्थर की दीवार ने मानों मुझे अपने गाढ़ आलिंगन में बद्ध कर लिया। पहरेदार सतर्क दृष्टि से पहरा देने लगा। कोई भी कष्ट, कोई भी असुविधा न हो, जिससे मेरा यह अमूल्य जीवन अपने आप कहीं नष्ट न हो जाय। बहुत सावधान थे वे, कि मैं कहीं आत्म-हत्या न कर बैठूं।

ऐसे ही आदर और सम्मान के साथ मुझे अभी छः-सात महीने जीवित रहना है। उसके बाद वे मेरी इस देह को फांसी पर लटकाने के लिए, देवता के भेंट की भांति ही, जल्लाद के हाथ सौंप देंगे।

पहले दो—चार दिन,—सबका करुणा-सागर उथल उठा। मौत की आग में डालने के पहले मानों मेरी देह पर अमृत का सिंचन कर रहे हों!—परन्तु फिर वही पुराना बर्ताव। कभी-कभी विद्रुम की स्निग्ध-धारा।

मेरी उम्र, शिक्षा और चेहरे ने इस समय कुछ मदद दी। पढ़ने-लिखने की आज्ञा मिल गई। सवेरे-शाम भगवान की आराधना करने का हुक्म मिल गया। पहरेदारों की नजरबन्दी में कुछ घूमने की भी इजाजत दी गई। और दो-एक अभागे कैदियों से बातें करने

का मौका भी मिला—वे यहां पर भी आनन्द से हैं। मैंने उनका अपराध पूछा। ओह उन लोगों की भाषा कैसी बेहूदी थी! किसी ने कहा, चोरी, किसी ने कहा, जाल, किसी ने कुछ, किसी ने कुछ! और वे इस तरह से कहने लगे, जैसे उनके वे काम बड़े बहादुरी के थे। उनकी धारणा कुछ अजीब ही थी और सान्त्वना की रीति भी अद्भुत थी।

फिर भी वे अपनी सहानुभूति मुझ पर प्रकट करते थे। यही सब थे मेरे एकमात्र साथी तथा मित्र। एक वह समय था, जब मैं इनसे हृदय से घृणा करता था, और आज इनसे बात करते हुए भी शान्ति मिलती है। ये यदि न होते, तो मैं पागल हो जाता। परन्तु क्या ये सचमुच ही मनुष्य नाम के योग्य हैं?

आह, बेचारे सचमुच ही अभागे हैं। जो साधु हैं उनका स्तोत्र तो सभी गाते हैं। जो धनी हैं, भाग्यवान हैं, उनके मुख से एक वाणी सुनने के लिए तो सभी आतुर रहते हैं। परन्तु जो इन अभागों को भाई कहकर छाती से लगा सकते हैं, न मालूम वे किस श्रेणी के मनुष्य हैं। उनका स्थान स्वर्ग के कितने ऊपर और कहां है? वे सचमुच ही उदार हैं।

और ये जो पहरेवाले हैं—वे भी सहानुभूति दिखाने आते थे। परन्तु उनकी सहानुभूति मानों परिहास था। दुर्दशा के पंजे में पड़कर ही आज मैं मनुष्य-प्रकृति को समझने लगा हूं। यह घृणित कैदियों का दल, इनकी सहानुभूति—व्यथित दृष्टि! वह कितनी पवित्र है! ये मुझ से घृणा नहीं करते! मेरे अपराध का परिणाम-निर्णय नहीं करते, आलसी दर्शकोंकी भांति गिद्ध-दृष्टिसे मेरी ओर नहीं ताकते।

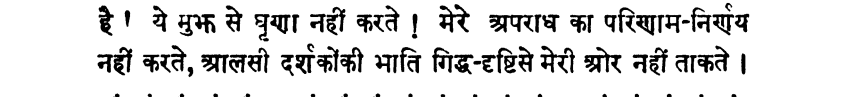

सोच रहा हूं कि यदि इन बातों को लिख जाऊ तो बुरा क्या है ? बातें करने के लिए जब कोई साथी नहीं मिलेगा तब ये कागज-कलम ही तो मेरे प्यारे साथी बन सकते हैं। परन्तु लिखूगा क्या ? मेरी इन व्यर्थ चिन्ताओं के ढेर को कागज पर सजाने से फायदा ही क्या है ? चारों ओर दीवारों की वेष्टनी में निर्जीव शृखलित जीवन के सुख-दुख की माला मैं किसके लिए गूथू —मेरी यह माला कौन पहनेगा ? मैं आज इस ससार का मनुष्य नहीं हू।—इस लोक और परलोक के बीचों-बीच एक स्थान पर खड़ा हूं। मैं किसका आश्रय मागू ? मेरा अब कौन है ?

फिर भी मैं अपनी व्यथाओं को वेदना की डोर मे गूथूगा। मैं अपने व्यथित भावों को लिख जाऊगा। देखकर लोग घृणा करेगे ? करने दो। लोगों ने मुझे घृणा के सिवा और दिया ही क्या है ? मेरे दुःख मे उनके हृदय मे सहानुभूति जगी ही कब थी ? फिर मैं उनका भय क्यों करू ? उनकी घृणा से मेरा अब क्या आता-जाता है ?

दिल के अन्दर एक आधी चल रही है। एक भीषण संग्राम हो रहा है। यह लड़ाई है कठिन और कठोर मौत के साथ !

जिसके जीवन के दिन बिलकुल गिन दिये गये हैं, उसकी अवस्था—ओह ! प्रकाश शीघ्र ही बुझा दिया जायगा। जीवन का प्रकाश भीबुझ जायगा। हा, शीघ्र ही !

पल-पल में जिस भीषण यन्त्रणा का सामना मैं कर रहा हूं—तुच्छ फासी की रस्सी की यन्त्रणा क्या इससे भी अधिक है ? वह तो एक विराट मुक्ति का पथ दिखायेगी। इस बद्ध वायु और रुद्ध करुणा के ऊपर से विराट सकीर्णता का पत्थर तो एक वही हटा

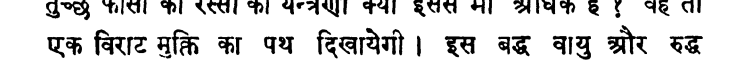

देगी। उसके बाद !—आह, आशा और प्रकाश का अपूर्व राज्य —परन्तु यह सुन्दर ससार—ओह !

अच्छा ये लोग—जिन्होंने कानून बनाया है, क्या इन्होने कभी यह भी सोचा कि मनुष्य को फासी पर लटका देने का अधिकार मनुष्य को किसने दिया ? उसमे भी प्राण हैं, चेतना है, बुद्धि है, ज्ञान है ! एक पतली-सी रस्सी के सहारे पल भर मे इन सबको नष्ट कर देना—साथ ही उसकी सब साध, उसकी सब आशा, उसका सारा प्रेम, विराट हृदय, सब को भस्मीभूत कर देना—यह कैसा नृशस, कैसा अमानुषिक अनुष्ठान है ? परन्तु उनकी समझ में ये बातें नहीं। वे इन बातो को नहीं सोचते। उनकी आखों के सामने नाचती है केवल एक रस्सी और गर्दन—बस, और कुछ नहीं। प्रतिशोध को ही उन्होंने सर्वोच्च समझ रक्खा है।

इसीलिए तो मैं लिख रक्खू गा ! अपनी इस वेदना को खेला-ऊगा। सफेद कागजों पर, इस कलम के सहारे ! मन के भीतर जो द्वन्द्व चल रहा है, कोई उसे नहीं देखेगा, नहीं समझेगा ? तुच्छ शरीर की वेदना ! वह, दम घुट रहा है ! क्या कभी कोई इन कागजों को नहीं पढ़ेगा कि क्या-क्या कष्ट सहकर एक आदमी ने प्राण दिये हैं ? ईश्वर जनता है। शायद इन्हें कोई भी न पढ़े। शायद किसी दिन आधी की हवा मे उड़कर ये कागज बिखर जायगे। सड़कों के किनारे और मोरियों मे पडे रहेंगे या कोई पसारी इनसे पुड़िया बाधेगा। स्याही की शेष रेखा भी मेरे ही जीवन की शेष सास की भाति नीरव और निर्जन में ही विलीन हो जायगी।

: ५ :

शायद कभी किसी की दृष्टि इन कागजों पर पड़े—तब ऐसा आन्दोलन शुरू होगा कि फांसी की प्रथा ही उठ जायगी। कितने ही निर्दोषों को, कितने ही अभागों को दुर्दशा के हाथ से छुट्टी मिल जायगी। परन्तु उससे मेरा क्या लाभ होगा? मेरा जीवन तो उसके बहुत पहले ही फांसी की वेदी पर चढ़ा दिया जायगा।

प्राण निकल जायगा। मृत्यु हो जायगी। सूर्य का यह प्रकाश, वसन्त की यह स्निग्ध हवा, फल-फूलों से भरा हुआ यह विचित्र-संसार, रंगीला आसमान, सारे चराचर, हाय, मैं इन सबके बाहर चला जाऊंगा।

नहीं, मुझे अपनी रक्षा करनी ही होगी। अपने जीवन को बचाना होगा।

क्या किसी प्रकार भी इस मृत्यु की गति को मैं रोक नहीं सकता? आह, इच्छा होती है कि कारागृह की इस कठिन दीवार पर अपना सिर फोड़ लूं! निराशा और क्षोभ से फांसी देनेवाले हाहाकार कर उठेंगे और तब मुझे बड़ा आनन्द आयेगा!

अच्छा एक बार अपनी अवस्था पर शुरू से विचार कर लूं।

आज तीन दिन हुए मेरी सुनवाई खतम हो गई है। वकील कहता है, अपील करनी चाहिए। अन्तिम चेष्टा।

आठ दिन तक दरख्वास्त इस कमरे से उस कमरे मे घूमती रहेगी। पन्द्रह दिन बाद कोर्ट में पहुंचेगी? उसके बाद नम्बर डलेगा, रजिस्ट्री होगी। फिर उस पर विचार होगा। पर अभी तो अपील करने की इजाजत भी मिले या नहीं, इसमे भी सन्देह है।

फिर पन्द्रह दिन तक इन्तजार करना होगा। अधीर भाव से, प्रतीक्षा करनी होगी। फिर वही विचार का अभिनय! सरकारी वकील समझावेगा कि इस कैदी का अपराध यह है और वह है; अपील करना इसकी धृष्टता है, अपराध साबित हो गया है।

इस तरह छः हफ्ते बीत जायगे।

सोच रहा हूं, एक 'विल' (वसीयतनामा) लिखू! सोच तो रहा हूं, लेकिन व्यर्थ है मुकदमे के खर्च में मेरी सारी जायदाद तबाह हो गई। जो कुछ रह भी गई है उसका वसीयतनामा लिखाने से शायद कोर्ट और भी कुछ दण्ड ले लेगा!

ससार में मेरी एक तो बूढ़ी माता है, किशोरी स्त्री है, और एक छोटी कन्या है। तीन वर्ष की छोटी-सी लड़की है वह। उसके लाल चपल ओठों पर हसी तो हमेशा लगी ही रहती है। उज्ज्वल और नीली आखे, घु घराले केशों के गुच्छे, दो-चार मुक्त केश उसके मुख और आखों पर उड़ा करते हैं। मानों फूलों पर लताओं का झालर झूलता हो। मैंने उसको छः महीने हो गये नहीं देखा! ओह, छः महीने हो गये।

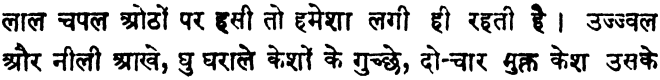

मेरी मृत्यु से ससार मे तीन नारी अनाथ हो जायगी ! पुत्रहीन, पतिहीन, पितृहीन—तीन अभागिनी। कानून के एक इशारे से तीनों का आश्रय टूट जायगा।

मुझको जो दण्ड मिल रहा है, यदि यह ठीक भी हो, तो भी इन असहायों ने तो कोई अपराध नहीं किया। इनपर यह आघात क्यों ? सरकार इसका क्या जवाब दे सकती है ?

लोगों की घृणा इनके जीवन की जो क्षति करेगी, उसके लिए तो सरकार ने कोई व्यवस्था नही की। फिर भी इसी का नाम विचार है। यही विचार की सुव्यवस्था है ! इस ढोंगपर मुझे हसी आती है।

बूढ़ी माता के लिए मैं कातर नहीं हूं। उनकी जीर्ण देह को विदीर्ण करने के लिए यह धक्का काफी है।

स्त्री के लिए भी चिन्ता नहीं है। वह तो वैसे ही बिस्तर पर पड़ी हुई है। चिर-रुग्णा है; रोग से उसका जीवन-दीप बुझने ही को है।—इस सम्वाद से उसके जीवन की अन्तिम रश्मि ससार में विलीन हो जायगी। हा, यदि वह पागल न हो जाय।

सुनता हूं पागलों का जीवन दीर्घ होता है। होने दो दीर्घ। फिर भी मृत्यु ही की भाति उसमे विराम है, शान्ति है।

परन्तु मेरी कन्या—वह शान्त शिशु, आदर की कन्या मेरी—हंसी, खेल और गीतों मे जो सब भूली हुई है। आह, अभागिनी नहीं जानती कि उसके सिर पर भी कोई आफत लटक रही है। वज्र की शिखा की भाति उसका जीवन भी पिस जायगा, दलित हो जायगा ! ओह, यही चिन्ता मेरी नस-नस को जला रही है।

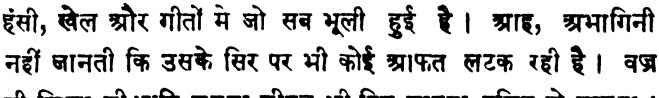

: ६ :

अभी रात बाकी है। आखों में नींद नहीं। अधकारपूर्ण कारागार! एक शब्द भी कहीं सुनाई नहीं देता। अब समय कैसे बिताऊ! समय बिताने का साधन यहा कहा से आये?

कमरे के एक कोने में लैम्प जल रहा था! उसी को लेकर दीवार के चारों तरफ देखने लगा। कहीं ज़रा-सा भी छेद नहीं है? बाहर की ठडी हवा के भीतर आने का कोई छोटा-सा रास्ता? नहीं।

दीवार में कितनी ही तरह की मूर्तिया अकित हैं। कितनी ही भाषाओं में, कितनी ही बातें लिखी हुई हैं, कहीं खड़िया से तो कहीं कोयले से! हाय, मेरे ही जैसे अभागे मन की व्यथा को इस पत्थर की दीवार पर लिख गये हैं! उनके मर्म का सारा बन्धन टूट गया! फिर भी इस पत्थर की दीवार ने सहानुभूतिका एक शब्द भी उनसे नहीं कहा। एक क्षीण प्रतिध्वनि भी नहीं की। मूक, नीरव पाषाण इसी प्रकार निर्विकार खड़ा रहा। उनके व्याकुल कण्ठ का आर्त्तनाद पत्थर से शरीर पर लग कर चूर्ण हो गया।

मैं उनकी व्यथा की बाते दीवार पर देखने लगा। एक साधन मिल गया। उनकी वेदना की माला को मैं ही आज आसू भरकर

पहन लू ! मृत्यु की बात फिर भी थोड़ी देर को भूल जाऊ गा !

ठीक मेरी शय्या के पास दीवार पर दो हृदयों को एक तीर से गू था है। यह एक चित्र है, शायद चित्रकार ने अपने हृदय के शोणित से ही उस पर लिख रक्खा था, "कलेजे की मुहब्बत !" हाय, बेचारे ने यहा बैठकर दिन-रात केवल मुहब्बत की बात ही सोची होगी। पास ही कोयले से किसी ने लिखा है, "सम्राट् की जय हो !" कितनी आशा, आकाक्षा और आश्वासन इन अक्षरों में भरा है।

एक तरफ किसी ने लिखा है, "मैं भाथिया को प्यार करता हू !" और एक ओर केवल "ए" अक्षर और केवल सफेद खड़िया की एक रेखा। अधकार में भी चादी के अक्षर की भाति ही वह चमक-रहा है !—"ए" शायद उसकी प्रियतमा हो, शायद उसका नाम "एमा" या "एडिथ" था। हाय, इस एक अक्षर मे एक व्यथा-कातर जीवन की कितनी बड़ी लम्बी सास मिली हुई है।

मैं बैठकर सोचने लगा। मेरे इस निःसग और निर्जन मुहूर्त में पत्थर की दीवार मानों करुणा से जाग उठी। उसने अपनी पत्थर की छाती में इतनी मर्म-व्यथा, इतनी गुप्त वेदना छिपा रक्खी थी ! आज कहा है वह अभागों का दल ! कहा है—उनकी भाथिया, एमा, एडिथ। किस गुलशन की आड़ मे, किस खिड़को के पास बैठकर वे आसमान की ओर देख रही हैं ! उनकी ठडी सास, उनकी विरह-व्यथा, उनका प्रिय-वियोग क्या समाप्त हो गया ? कौन कहेगा।

लैम्प उठाकर मै देखने लगा ! दीवार के एक कोने पर, यह क्या ! यह तो फासी का चित्र है ! किसने यह चित्र बनाया ! किस

मूर्ख ने इस प्रकार मृत्यु का आह्वान किया। यह पृथ्वी, यह जीवन, क्या उसके लिए सचमुच ही आसरा हो गया था? दो लकड़ी सीधी-सीधी खड़ी हैं। ऊपर दोनों के सिर से एक और लकड़ी बंधी है। बीच में रस्सी झूल रही है—मैं ध्यान से उसे देखने लगा। सिर में चक्कर-सा आने लगा। लैम्प हाथ से गिर पड़ा। कमरा अंधेरा हो गया। ओह, कैसा भयानक और तीव्र अन्धकार था। अवसन्न होकर मैं ज़मीन पर बैठ गया।

फिर टटोल कर मैं अपनी शय्या पर लेट गया। मन अस्थिर हो रहा था—इस पत्थर की दीवार पर लिखे हुए प्रत्येक चित्र और प्रत्येक शब्द को देखने की एक व्याकुल प्यास जग रही थी।

अन्धकार में दीवार टटोलने लगा। मकड़ी के जाले में हाथ लिपट गया। जाल से हाथ को मुक्त कर फिर बिछौने पर बैठ गया। नींद आने लगी। मैं सो गया। जब आंखें खुलीं तो कमरे में कुछ अस्पष्ट प्रकाश आ रहा था। फिर खड़ा होकर दीवार को देखने लगा। दीवार पर एक जगह चार नाम लिखे हुए थे,—दातों १८१५; पूले १८१८; जिन मार्टिन १८२१, कास्तेंग १८२३। पढ़ने के साथ ही एक भीषण स्मृति मन में जाग उठी।

दातों ने भाई की हत्या की थी। पिशाच पूले ने अपनी स्त्री की हत्या की थी। जिन मार्टिन ने बन्दूक की गोली से अपने पिता का सिर उड़ा दिया था। और कास्तेंग—डाक्टर कास्तेंग ने अपने मित्र को जहर दे दिया था!

मैं कांप उठा। उनकी आखरी सांस अभी तक मानों इस

कमरे की हवा के साथ मिल रही है। इसी शय्या पर वे अपने खूनी जिगर की आखरी बाते, आखरी चिन्तायें उ डेल गये हैं। इसी कमरे मे वे भी चलते-फिरते थे। आज भी उनकी सास से यह कमरा गरम है।

उसके बाद मैं भी उनके पीछे यहा आया हू! वे मानों चारों ओर से हाथ का इशारा कर मुझे बुला रहे हैं।—वह उनके गले की आवाज़ भी तो सुनाई दे रही है न? मैंने आखें बन्द कर लीं। उनकी मूर्ति मानों और भी स्पष्ट हो उठी!

यह क्या सत्य है, अथवा स्वप्न है, या मति भ्रम—पैर में कुछ पानी का स्पर्श मालूम हो रहा है।—यह क्या?—मकड़ी—! —एक बड़ी मकड़ी को मैंने पैर से दबाकर मार डाला है।—इसी का जाल मेरे हाथ से फट गया था!—मुझे चेतना आई—अब तक मानों मूर्छित था! छाया-मूर्ति मेरे चारों ओर घूम रही है!

नहीं-नहीं, मन को स्वस्थ और सबल करना होगा! पल-पल पर मृत्यु की यत्रणा! इसके कवल से उद्धार पाना ही होगा! दातों और पूलें कब्र के नीचे सो रहे हैं। वे यहा नहीं आ सकते।—नहीं, कभी नहीं आ सकते! मैं क्यों व्यर्थ ही उनसे डरा जा रहा हूं? इस कारागृह से बाहर भागना तो फिर भी सम्भव है, परन्तु कब्र के नीचे से बाहर निकलना बिलकुल असम्भव है। तो फिर क्यों व्यर्थ ही मै मरा जा रहा हू?

: ७ :

दिन का उज्ज्वल प्रकाश। चारों ओर एक कोलाहल की ध्वनि। बडे-बडे दरवाजो के खुलने और बन्द होने का शब्द, चाबियों की खनखनाहट! मानो यह कारागृह का उल्लास। सगीत हो। सभी आनन्द मे मग्न हैं, सजीव हैं। फिर मैं क्यों निरानन्द और उदास हू?

दरवाजे के पास से एक पहरेदार जा रहा था। उसको बुलाकर मैंने पूछा, "इतना शोर क्यों हो रहा है? इतना आनन्द क्यो मनाया जा रहा है?"

उसने उत्तर दिया—"नये कैदियो का एक दल आया है, उनके पैरों में बेड़ी पड़ेगी। तुम देखोगे नहीं?"

संन्यासी की भाति यह वैचित्र्यहीन, अप्रसन्न, निःसग जीवन से मैं उकता गया था। देखने का लोभ मैं सवरण नहीं कर सका।

बहुत सावधानी के साथ पहरेदार मुझे एक कमरे में ले चला। बैठने के लिए वहा एक कुर्सी भी नहीं थी। हा, एक बड़ी खिड़की जरूर थी। खुली हुई खिड़की। गरादों के भीतर से आज कई दिन बाद आसमान का एक बड़ा हिस्सा नजर आया। अहा, आसमान कैसा सुन्दर है?

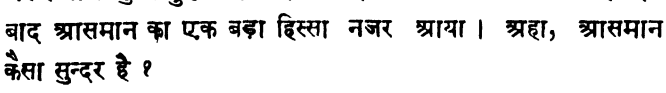

पहरेदार ने कहा "यहा से मजे मे देखो ; राजा की भाति आराम से देख पाओगे। कोई पास आकर भीड़ नहीं करेगा।"

कहकर दरवाजे को बन्द करता हुआ वह बाहर चला गया। ताले में चाबी लगाने का शब्द भी कान में आया। खिड़की से कारागार का बड़ा आगन साफ दिखाई दे रहा था। आगन के चारों ओर ऊची दीवार थी। एक लम्बा दालान भी था, जिसमे असख्य सिर-ही-सिर नजर आ रहे थे। सभी तमाशा देखने खडे थे। आख और मुख पर आग्रह का चिह्न एक था—कुतूहल की एक विराट रेखा थी। नरक के प्रेत मानों आज मतवाले होकर नाच रहे हैं! सबकी आखें आगन की ओर थीं।

बारह बजे। आगन का फाटक खुला। असख्य नई मूर्तिया भीतर आयीं। साथ ही एक बुरा कोलाहल होने लगा। मानों पल भर में एक नई जान कारागार में भर गई। अट्टहास और चीत्कार से सारा स्थान गू जने लगा।

कैदियों की नत-दृष्टि और पहरेवालों का वीर-दर्प—यह सृष्टि ही अजीब थी!

कैदियों का नाम पुकारा जाने लगा। उनका अपराध क्या है, दण्ड का परिणाम क्या है, सब पूछा जाने लगा। जिनके दण्ड का परिणाम अधिक है, उनके नाम के साथ जय-ध्वनि होने लगी। दर्शकों के हृदय मे कुछ और ही आनन्द था। मानो कैदियो का एक दल विजयी-सेना है, जो अभी युद्ध जय करके लौट रही है। इसीलिए तो यह आनन्द का आयोजन है और इसी कारण तो यह ताण्डव-नृत्य हो रहा है। दो-एक दर्शक तो आनन्द के मारे गुलाटे तक खाने लगे।

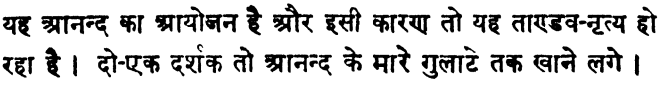

उसके बाद कैदियों के दल में आपस की जान-पहचान है या नही, इसकी तलाश होने लगी। जिनमें जान-पहचान है, उनको अलग कमरे में रखना चाहिए—कहीं उनको कुछ शाति न मिल जाय; दण्ड की कठोरता कहीं कम न हो जाय!

चारों ओर का विचित्र कोलाहल एक अखण्ड रागिनी की झंकार की सृष्टि कर रहा था। मुझे ऐसा मालूम हो रहा था कि यह किसी माया-लोक की सगीत-ध्वनि है। परन्तु अत्यन्त ही अर्थहीन, लक्ष्यहीन, उद्देश्यहीन रागिनी थी वह। धीमी हवा मेरे मस्तक को स्पर्श कर रही थी। एक छोटी-सी आशा की किरण भी मेरे मन में न जाने क्यों जगने लगी। वह मीठी धूप, मुक्त-हवा, उदार आकाश—वही तो जीवन है!—इन सबसे दूर रहना—ओह, वह मृत्यु है!

अकस्मात हवा की भाति धूप हट गई। किसी ने मानों एक काला परदा उस पर डाल दिया। हलके बादल ने आकर पृथ्वी और धूप के बीच एक व्यवधान की सृष्टि की। स्वप्न के कुहक-जाल की भाति ही एक छाया ने आकर धूप की गति रोक दी। सहसा पानी बरसने लगा। आगन से दर्शकों का दल हट गया। केवल घोंसले के खोये हुए पक्षियों की भाति ही कैदियों का दल असहाय-भाव से भीगने लगा। दो-एक व्यक्ति काप रहे थे। परन्तु इससे क्या? कारण, वे कैदी हैं। आराम के साथ उनका कोई रिश्ता नहीं है।

जब पानी बन्द हो गया तब सब फिर साकलों में जकड़ दिये गये। पैरों में बेड़िया डाली गईं। कोई रोने लगा और ज़मीन पर लोट गया। एक आर्तनाद का स्वर! परन्तु मारे कोड़ों के सब सीधे कर दिये गये। ओह, कैसे पिशाच हैं ये?

बादल हट गया। सूर्य का प्रकाश फिर निकलकर मुसकराने लगा। मानों काले पर्दे को दोनों हाथों से हटाकर वह बाहर निकल आया हो, यह तमाशा देखने के लिए। भीतर से कैदियों का दल फिर निकल आया। कोई सीटी बजा रहा था और कोई गा रहा था।

अब भोजन की पारी है। भोजन की सामग्री आई। बड़ी-बड़ी बालटिया, उनमें फीका-सा कोरे जल का पदार्थ, स्वाद नहीं, गन्ध नहीं! भुक्त-भोगी को ही उसका ज़ायका मालूम है।

फिर भी वे—बेचारे भूखे—तृप्ति के साथ उसे खाने के लिए व्यस्त हो उठे। उसीमें उनको कम आनन्द नहीं था।

आग्रह के साथ मैं सब देख रहा था। अपना खयाल मैं भूल गया। चित्त में करुणा भर गई। आखों मे आसू आ गए।

सहसा एक आवाज आई, "उठो, चलो!" कैदियों मे शोर-गुल मच गया। वे सब खड़े हो गये। कतार बध गई सब चलने लगे।

मेरी खिड़की के पास से ही वे जा रहे थे। मुझे देखकर वे एक बार खड़े हो गये। मेरी छाती धड़क उठी। क्या मैं अजायबघर का कोई जानवर हूं, जो इस प्रकार वे मेरी ओर ताक रहे हैं?

एक ने कहा,—"फासी का आसामी देख लो। इसको फासी दी जायगी।" चारों ओर एक हसी की धूम मच गई। असभ्य पशु।

मेरे सिर मे चक्कर-सा आने लगा। मानो मै शून्य मे लटक रहा हू!

इन्होंने कैसे जान लिया कि मुझे फासी का हुक्म मिल गया है?

"अच्छा आखरी सलाम दोस्त !" निर्लज्ज की तरह वे चिल्ला उठे। एक ने कहा, "हमसे तो अच्छे ही हो, शीघ्र छुट्टी मिल जायगी। मुझे तो अभी चौदह वर्ष यहा भुगतना है।"

मेरी चेतना लुप्त-सी हो गई थी। हिलने तक की शक्ति नहीं थी। आखों के सामने नदी के स्रोत की भाति कैदियों का दल चला गया।

सहसा होश आया। मैं सिहर उठा। सोचा, इस खिड़की के बाहर कितना प्रकाश, कितना आनन्द है—और भीतर वायु, प्रकाश और प्राण सब रुद्ध हैं। यदि ये सीखचे न रहते—सीखचों को पकड़-कर जी-जान से एक बार हिलाने की चेष्टा की! वे जरा भी न हिले। मुझे चोट आ गई। मैं क्रोध से गरज उठा। मेरा अन्तर विदीर्ण हो रहा था।

दूर से शोर-गुल की एक अस्पष्ट ध्वनि कान में आ रही थी। मैं वहा अवसन्न-भाव से बैठ गया। दूर का कोलाहल धीरे-धीरे क्षीण हो गया। मेरे जीवन पर मानों कोई एक काला पर्दा धीरे-धीरे डाल रहा था। मैं मूर्छित होकर गिर पड़ा।

: ८ :

आखें जब खोलीं उस समय रात हो गई थी। मैं निवाड़ की खाट पर सो रहा था। बत्ती जल रही थी। कमरा बहुत बड़ा था और खाटों की कतारें लगीं हुई थीं। मैं समझ गया कि मैं अस्पताल में हू। चारों ओर बिलकुल निस्तब्ध शान्ति।

कुछ देर तक तो मुझे कुछ याद ही नहीं आया। जाग तो रहा था, परन्तु चेतना नहीं थी।

पहले जेलखाने के इन अस्पतालों से मैं कितनी घृणा करता था, परन्तु आज मैं वह मनुष्य नहीं रहा। एक मैली-सी चादर। रोगो की तीव्र दुर्गन्ध! चारों ओर परिपूर्ण अशान्ति। एक मूर्तिमना विभीषिका! मैंने आखें बन्द कर लीं—निद्रा के शीतल स्पर्श से सब यत्रणाओं को भूल गया।

अचानक नींद खुल गई। देखा, दिन निकल आया है। बाहर से शोर-गुल की आवाज सुनाई पड़ रही थी। मेरी खाट बिलकुल खिड़की के पास लगी हुई थी। खिड़की से मैंने बाहर की ओर देखा, कैदी लोग काम पर जाने की तैयारी कर रहे हैं। उनकी बेड़ियों का झनझनाहट शब्द अच्छी तरह सुनाई दे रहा है। सुना, सबेरे ही एक

व्यक्ति को फासी लग चुकी हैं—उत्सुक दर्शकों का दल, वही देखकर, हल्ला करता हुआ लौट रहा था। निर्लज्जों को हल्ला करने मे शर्म नहीं मालूम होती। एक आदमी की जान चली गई और ये आनन्द से चिल्ला रहे हैं। इनके सिर पर गिरने के लिए आकाश में क्या वज्र का अभाव हो गया है ?

: ६ :

मैं शीघ्र ही स्वस्थ हो गया। मेरा भाग्य ही ऐसा बुरा है। मुझे अस्पताल छोड़ना पड़ा। फिर कारागृह का वह बन्द कमरा, मेरी ही लम्बी सास की गरम हवा से भरा हुआ, चारों ओर निराशा और विषाद का निरानद और विमर्ष-भाव—इसी कमरे में जीवन की अतिम घड़िया गिननी पड़ेंगी।

कोई भी बीमारी नहीं! यह तरुण, स्वस्थ और सबल देह—रोग के ग्रास से वह जीर्ण क्यों होने लगा? नसों के भीतर से गर्म खून तेजी से चल रहा है, ऐसी बुद्धि, ऐसा स्वास्थ्य—मन फिर क्यों पल-पल मे विचलित हो रहा है? क्यों वह जला जा रहा है!

अस्पताल से लौटने के बाद केवल एक बात कभी-कभी सोचने लगता हूं। वहा से भाग जाने का अच्छा मौका था, वह मौका मैंने मूर्ख की भाति क्यों छोड़ दिया? क्या अच्छा और आसान मौका था वह! रात के निस्तब्ध अन्धकार में चुपचाप निकल सकने पर—क्या ही मुक्त-स्वाधीनता के उदार राज्य में मैं पहुंच जाता? सिर के भीतर नसें धिक-धिक करने लगीं। आखों के आगे चारों ओर हरे गोले तैरने लगे।

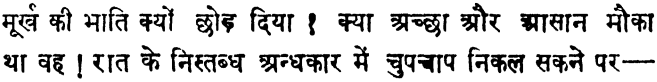

यदि भाग जाता ? अहा ! उसमे, इनका क्या नुकसान था ? अपील से यदि छूट जाऊ ? परन्तु उसकी सम्भावना कहा है ? गवाहों ने सौगध खाई है --विचार काफी तौर से हो गया है। अब अपील से क्या फल होगा ? कुछ नहीं। हाय, सब व्यर्थ है, फासी की रस्सी ही मेरे भाग्य में बदी है। अपील की क्षीण आशा ? वह अत्यन्त कमजोर है।

यदि आज क्षमा मिल जाय ! क्षमा ? परन्तु क्यों मिलेगी ? असख्य अभागे—बोझा ढोकर, बेड़ी खींचकर जेल में सड़ रहे हैं-- सड़ा हुआ भोजन खाकर पेट की ज्वाला को बुझा रहे हैं। इनका परिवार, कुटुम्ब, मित्र कहा हैं ? इनके घर की दशा क्या है ? ये इस यंत्रणा को समान भाव से भोगते रहेंगे और मुझे क्षमा मिल जायगी, मैं आनद के साथ घर लौट जाऊ गा ! क्यों, मुझे किस कारण वे क्षमा करेंगे ? देश के लोग इस अन्यायपूर्ण क्षमा को देखकर क्या कहेंगे ? नहीं क्षमा नही, फासी ही मेरी मुक्ति का एकमात्र उपाय है !

हा, यदि भाग जाता ! हरे-हरे खेतों से, छोटी-छोटी पहाड़ियों-पर से नदी-वन अतिक्रम कर किसी अनजान देश की ओर चलता रहता ! किसी की ओर नहीं देखता, किसी के दरवाजे पर नहीं ठहरता ! कहीं भी भीख नहीं मागता ! पेड़ के फलों से क्षुधा की निवृत्ति, नदी के जल से तृष्णा का निवारण, पक्षियों के गीत में विश्राम, तरु-तल पर निद्रा ! लोकालय में ? नहीं—यदि कोई सन्देह करे ? यदि पकड़े ? मैं भागता थोड़े ही !—उससे तो उनका शक बढ जाता। धीरे-धीरे निश्चिन्त-भाव से कितने ही शहर-कस्बे-गाव पार कर जाता। एक गुप्तवेश कहीं से जुटा लेता। मेरे गाव के पास वह जो झाड़ी है,

यहीं जाकर पहले विश्राम करता। उस झाड़ी में मैंने कितनी ही रातें जगकर बिताई हैं, कितने ही दिन वहां खेलकर काटे हैं। बचपन में हमजोलियों के साथ वहां वह आंख-मिचौनी का खेल! हंसी, दिल्लगी, मजाक! अहा, कैसे सुन्दर दिन थे वे! उस अतीत का एक पल भी कहीं आज मुझे मिल जाय!

हां, फिर जब अंधेरा हो जाता तब सड़क पर निकलता, भिन्सेन जाता! नहीं भिन्सेन कैसे जा सकता था? रास्ते में बहुत बड़ी नदी है, पार होना कठिन है। तो आपजिन जाता! नहीं, शायद जर्मनी जाना ही ठीक होता—वहां से हेमर, हेमर से इङ्गलैण्ड! परन्तु यदि उस समय पुलिस पकड़ लेती, पासपोर्ट मांगती तो? बड़ी आफत होती।

हाय, अभागा हूं। मैं यह क्या सोच रहा हूं? स्वप्न-भ्रांत जीव, तीन फुट मोटी इस दीवार को लांघना सम्भव कहां? हाय-हाय, कोई उपाय नहीं है—नहीं है! मृत्यु ही अब मेरी साथिन बनेगी!

उस बचपन की याद आ रही है, जब मैं बालक था। इसी जेल में फांसी देखने के लिए आता था। ओफ़, कितनी भीड़ जमती थी! और आज?

: १० :

लैम्प बुझनेवाला था। अभी सबेरा हो जायगा। गिर्जे की बड़ी घड़ी में टन्-टन् कर छः बज गये।

पहरेदार ने आकर टोपी खोलकर सलाम किया। नम्रकण्ठ से पूछा, 'कुछ खाने की इच्छा है या नहीं?' आश्चर्य। ऐसा विनय-नम्र व्यवहार। मेरा सारा अंग काप उठा। तो क्या आज ही?

हा, आज! जेलर स्वय आये थे! मुझे क्या चाहिए इसी की जाच करने। और भी उन्होंने पूछा मेरे प्रति कोई बुरा व्यवहार तो नहीं करता? मेरे सम्मान की हानि तो कोई नहीं करता है न? मेरा स्वास्थ्य कैसा है? रातको नींद तो अच्छी आती होगी? हर-एक बात के साथ महाशय कहकर सम्बोधन कर रहे थे! कोई भी सन्देह न रहा आज, तब आज ही, वह स्मरणीय दिन है। जिस दिन की बात एक पल के लिए भी नहीं भूला था।

जेलर अथवा उनके कर्मचारीगण, कोई त्रुटि कैसे कर सकता है, मेरे प्रति खराब व्यवहार कैसे कर सकता है? इसी की बात है! वे केवल कर्तव्य की पूर्ति कर रहे हैं। सतर्क भाव से मेरी निगरानी कर

रहे हैं। मेरे प्रति किसी ने कोई बुरा आचरण नहीं किया। मुझे इसीसे सन्तोष करना चाहिए।

और यह जेलर—यह भला आदमी कैसी मीठी-मीठी बातें करता है, मधुर दृष्टि से देखता है,—हाः-हाः, दीर्घबलिष्ट बाहु! कारागृह का यही एक प्रतिबिम्ब है! मालूम होता है यही जीवित पत्थर का एक जेलखाना है। यहां की सब वस्तुयें जेलखाने का ही रूपान्तर हैं! पहरेदार, लोहे की गरादें, पत्थर की दीवार—सब! चाबी और ताले तक जीवित मालूम होते हैं—सब मिलकर मेरा पहरा दे रहे हैं! और यह कारागृह—निष्ठुर कारागार, आधा पत्थर और आधा मानव-देह विशिष्ट—मुझको मानों इसने जकड़कर बांध रक्खा है! लोहे का हृदय लेकर मुझ से आलिंगन करने आ रहा है। दरिद्र अभागा हूं मैं। मुझ से यह दिल्लगी क्यों करते हैं?

: ११ :

चित्त शान्त है। कुछ भी फिकर नहीं है। दुविधा भी नही है। जेलर आकर देख गये हैं। उनसे मिलने के बाद मैं अच्छा ही हूं। पहले मन में जो थोड़ी-बहुत आशा थी भी वह मैंने अब छोड़ दी है—यह केवल उन्हीं के कहने से।

साढे छः या पौने सात बजे होंगे। अकस्मात मेरे कमरे का दरवाजा खुल गया। एक बहुत सफेद बालवाले बूढे आदमी ने मेरे कमरे में प्रवेश किया। आते ही उन्होने अपना भारी काला कोट खोल डाला और बैठ गए। कपड़ों से मैं समझा कि यह महाशय कोई आचार्य हैं।

मेरे सामने ही वह बैठे थे, सिर हिलाकर उन्होंने आकाश की ओर देखा। इस दृष्टि का अर्थ मैं समझ गया। उन्होने कहा, "क्या तुम प्रस्तुत हो गये हो बच्चे?"

शात स्वर से मैंने उत्तर दिया,—"नहीं, प्रस्तुत तो ठीक नहीं हूं—परन्तु हा, अभी उठने को तैयार हू।"

मेरी दृष्टि क्षीण हो रही थी। ललाट पर पसीना आ रहा था।

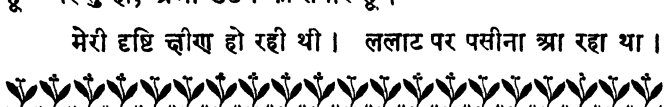

प्रस्तुत—एक दम प्रस्तुत,—परन्तु किसलिए ? मेरी छाती काप उठी। प्राणो के अन्दर एक विकट ध्वनि—शब्द होने लगा।

आचार्य बहुत-कुछ कह रहे थे—उनके ओंठ हिल रहे थे, हाथ-पैर और गर्दन भी साथ-ही-साथ हिल रहे थे। वे क्या कह रहे थे, यह मुझे नही मालूम; कारण, कोई भी बात मेरे कान के भीतर तक नहीं पहुचती थी।

फिर दरवाजा खुला। अब जेल के अध्यक्ष स्वयं उपस्थित हुए। शरीर पर एक लम्बा काला कोट, हाथ में कागजों का पुलिन्दा-सूरत पर एक दुःख का भाव लाने की चेष्टा कर रहे थे।

जेलर ने कहा,—"अदालत से खबर आई है।" एक बिजली मेरे सारे शरीर मे दौड़ गई।

मैंने पूछा,—"क्या ? अदालत मेरा सिर अभी मागती है ? वह तो मेरे लिए गोरव की बात है। मेरे इस सिर पर सरकारी वकील को कुछ विशेष लोभ है—यह मैं खूब जानता हू। हा, मैं बिलकुल प्रस्तुत हू।" वह पुलिन्दा खोलकर कागजो को पढने लगे,—वही अदालत की जटिल भाषा—विकट और दीर्घ शब्दो की झकार—जिनका अर्थ कहीं मुश्किल से ही कोई समझ सकता है। आध घटे तक कागजो को खस-खस करने के बाद उसका अर्थ समझ मे यह आया कि मेरी अपील मजूर नही हुई है। अच्छी बात है ?

कागजो पर से आखो को न उठाकर ही उन्होंने कहा—"प्ले दी ग्रीव्ह मे फासी होगी। साढ़े सात बजे हमलोग कासियाजारी जेल की ओर रवाना होगे। कृपया आप भी हमारे साथ चले।"

कुछ देर तक मैं चुप रहा, किसी की बात का उत्तर नहीं दिया। जेल के अध्यक्ष और आचार्य मे खूब बाते हो रही थीं। देश की मामूली चर्चा हो रही थी, वे उसी चर्चा में तन्मय थे।

ठीक इसी समय दरवाज़ा खोलकर चार हथियारबन्द पहरेदार कमरे मे घुस आये। देखने मे वे यमदूत से मालूम होते थे। सलाम करके उन्होंने कहा, "समय हो गया है।"

मैंने कहा—"मैं तैयार हू,—चलो।" उन्होने कहा—"आध घण्टे के भीतर ही रवाना होना पडेगा।" कहकर वे कमरे से बाहर चले गये। एक बार अन्तिम चेष्टा। भगवान, सचमुच ही क्या कोई आशा नहीं है?

भाग जाऊं! हा, जैसे भी हो भागना पड़ेगा। दरवाजा, खिड़की, छत, सब को पारकर जैसे भी हो भागना पड़ेगा! यदि देह के मास को भी रख जाना पडे तो वह भी स्वीकार है। केवल हड्डियों को लेकर ही भागू गा।

यदि कहीं से कोई यन्त्र या अस्त्र मिल जाय! राक्षस की भाति बल से मैं सब का उच्छेद कर जैसे भी हो—परन्तु मेरे हाथ मे एक कील भी तो नहीं है—अभागा हू—आशा नहीं है!

: १२ :

मै कासियारजारी जेल मे आया। अपनी इच्छा से नही, सरकारी हुक्म से—सरकारी दूतों की कड़ी निगरानी में! रास्ते की बात भी सुन लो।

साढ़े सात बजे पहरेदार ने आकर मुझे अभिवादन करते हुए कहा—"मेरे साथ आइए, महाशय!"

अदब और कायदे में कोई भी त्रुटि नहीं थी। मैं उठकर उसके पीछे हो लिया। सिर भारी हो रहा था—पैर ऐसे दुर्बल थे कि चलना मुश्किल हो रहा था। फिर भी चला! बाहर से एक बार मैंने अपने निर्जन कमरे की ओर देखा। इतने दिनों का आश्रय। कुछ ममता हो रही थी। आज इस कमरे को मैं सूना कर चला। परन्तु अधिक देर के लिए नहीं—सध्या तक जरूर कोई नया मेहमान इस कमरे मे आ जायगा। वाह रे विधाता का विधान।

आगन के सामने आचार्य बैठे थे। वह अपना भोजन शेष करने की फिक्र में थे। जेल के अध्यक्ष ने आकर मेरे साथ हाथ मिलाया। चार पहरेदारों की देख-भाल मे मैं चला।

अस्पताल में एक आदमी ने सलाम किया। उस समय मैं खुले

हुए आगन के बीचोबीच खड़ा था। सास लेने मे कुछ आराम मिल रहा था। परन्तु कब तक ?

बाहर गाड़ी खड़ी थी—वही गाड़ी जिसमें बैठकर मैं यहा आया था। लम्बी गाड़ी—भीतर लोहे की रेलिग से उसके दो हिस्से बना दिये गये थे। मालूम हो रहा था कि किसी ने लोहे से मकड़ी का जाला बुना हो ! दो अलग-अलग दरवाजे थे—एक पीछे की ओर दूसरा सामने की ओर। गाड़ी के भीतर अधेरा तो था ही, साथ ही, धूल और कूड़ा भी भरा हुआ था। इससे तो मेरा वह जेलखाने का कमरा लाख दर्जे अच्छा था। इस कब्र में जीते-जी घुसने के पहले एक बार अच्छी तरह चारो ओर देख लिया। इस मुक्त-आकाश की स्मृति को लेकर अधेरे सागर मे कूद पड़ू गा ! दरवाजे के सामने कतार बाधकर दर्शक लोग खडे थे। टपाटप पानी पड रहा था। मालूम हो रहा था कि यह पानी दिन भर बन्द न होगा। रास्ता और आगन कीचड़ से लथ-पथ हो रहा था !—चारो ओर कुछ उदासी-सी नजर आती थी।

गाड़ी पर चढ़ा। सामने के कमरे मे हथियारबन्द पहरेवालों का दल और आचार्य—पीछे के कमरे में अकेला मैं।

गाड़ी के साथ ही चार हथियारबन्द घुड़सवार ! चारों ओर इस प्रकार हथियारबन्द सिपाही—मानों मैं कोई बादशाह था !

गाड़ी चली। पानी से सड़क के पत्थर निकल आये। घोडे की नाल मे खटाखट शब्द हो रहा था।

पीछे एक आवाज के साथ जेल का फाटक बन्द हो गया—वह शब्द भी मैंने सुना। मैं मानों कुछ तन्द्रा से आच्छन्न था। कोई डर अथवा चिंता मुझे स्पर्श न करती थी मानों मुझे जीते-जी कब्र मे गाड़

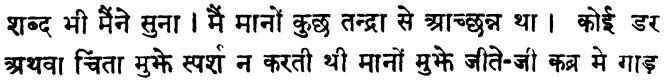

दिया हो—कुछ ऐसा ही भाव था। घोडे के गले मे घण्टा बंधा हुआ था—पहिये और घोडे की नाल से मिलकर गाड़ी का एक विचित्र ही शब्द कान में आ रहा था। मानो आधी की पीठ पर सवार होकर मै कही जा रहा होऊ—किसी निरुद्देश देश की ओर, किसी स्वप्न-लोक की ओर, शायद किसी देवकन्या की खोज मे!

गाड़ी के भीतर दरवाजे में जो छेद था, उसी मे से मै बाहर की ओर देख रहा था। एक जगह बडे-बडे अक्षरों मे लिखा था—"बूढे आदमियों के लिए अस्पताल"—इस ससार मे आदमियों को बूढा होने की भी फुरसत मिलती है? आश्चर्य की बात है। मेरी यह तरुण अवस्था! खैर, जाने दो उन बातों को—

गाड़ी घूमी। दूर पर नोटरडम का गुम्बज दीख रहा है। पेरिस के कोहरे को भेदकर गगनस्पर्शी गुम्बज उठा हुआ है। मैंने सोचा—"वाह, ऊपर से चारों ओर एकबार देख लेता तो अच्छा था।"

आचार्य ने बातचीत शुरू की। वह खूब बकते जा रहे थे। रोकनेवाला तो कोई था नही। आचार्य की आवाज से घोड़ो की नालों की आवाज मे कुछ अधिक मीठापन था। मुझे उनकी ओर ध्यान देने की फुर्सत नहीं थी। रास्ते पर खूब कोलाहल हो रहा था।

सब शब्द कान मे आ रहे थे। परन्तु स्वतन्त्र-भाव से नही—एक अजीब मिश्र-रागिनी के स्वर मे, अथवा मानों झरने से झर-झर कल-कल शब्द से पानी गिर रहा हो!

अचानक सुना, आचार्य कह रहे हैं—"क्या बुरी गाड़ी है यह, एक बात भी सुनाई नहीं देती।"

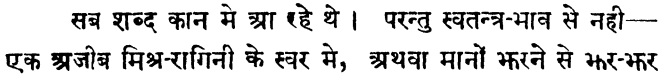

उनका कहना ठीक था—बिलकुल ठीक था।

आचार्य ने कहा—"तुम्हें शायद मेरी बात सुनाई नही देती होगी।—हा, क्या कह रहा था? आज पेरिस मे क्यों इतना शोर मचा हुआ है, मालूम है?"

मैं चौंक उठा, क्या कोई नया सम्वाद भी है? शायद मेरी फासी का हुक्म सुनकर ही यहा हल्ला मचा होगा।

आचार्य कहने लगे--"सध्या के पहले अखबार पढने की फुर्सत भी नहीं मिलेगी। सध्या के समय मैं रोज अखबार पढ़ा करता हू, उससे दिन के ढलने तक का समाचार मिल जाता है, एक भी बाकी नहीं छूटता।"

अब तक पहरेदारों का मुखिया चुप बैठा था, वह बोल उठा—"ऐसी मजेदार खबर, और आपको अभी तक मालूम नहीं है?"

मैंने कहा—"मुझे तो शायद मालूम है।"

उसने कहा—"आपको मालूम है? ताज्जुब की बात है। कहिए तो सही!"

"क्या तुम सुनने को बहुत व्याकुल हो?"

उसने कहा—"हा, अवश्य ही। राज्य के मामले मे हर एक को बोलने का अधिकार है—चाहे वह कोई भी हो। आप क़ैदी हैं तो क्या हुआ? मैं राष्ट्रीय-सेना में था, बचपन में मैं उसका कप्तान था। वह दिन भी बडे प्यारे थे।"

मैंने टोक कर कहा—"नहीं महाशय, मैंने कोई और ही बात सोची थी।"

उसने कहा—"और क्या बात ? क्या कहते हैं आप ? आपको कैसे मालूम हुआ ? किसने कहा आपको ? कहिए तो सही क्या खबर है, सुनू, जरा।"

आचार्य ने पूछा—"तुमने क्या सोचा था ?"

मैंने कहा—"शाम के बाद मुझे सोचने के लिए कुछ न मिलेगा, बस इतना ही मैं सोच रहा था।"

आचार्य ने कहा—"चच्-चच्! बडे दुःख की बात है, तुम्हें अत्यन्त चिन्ता हो रही है। परन्तु जी को ढाढस दो। मन को मजबूत करो।"

मुखिया पहरेदार बोला—"आप बहुत रजीदा मालूम होते हैं ? कास्तेगा को जब हम यहा लाये थे तो वह सारे रास्ते हसता-हसाता आया था!"

फिर वह अपने अनुभव की बाते करने लगा, पापामा को भी वही लाया था। सारा रास्ता वह चुरुट पीता आया था और रुवले के वे विद्रोही लड़के ऐसे हसते-चिल्लाते आये थे कि कुछ न पूछिए।

आचार्य ने कहा—"कष्ट और दुःख तो पाना पागलपन है, बुद्धि का दोष है। परन्तु महाशय आप बहुत ही दुखी मालूम होते हैं। आपकी इतनी कम उम्र!"

स्वर को यथासाध्य तीव्र कर मैने कहा—"कम उम्र! क्या कहते हैं आप ? आप से मेरी उम्र अधिक है। मेरी उम्र प्रति घण्टा दस वर्ष बढ रही है।"

आचार्य ने हसकर कहा—"क्यों मजाक करते हो, मेरी उम्र तो तुम्हारे परदादा के बराबर होगी।"

मैंने गम्भीर भाव से कहा—"नहीं, मजाक आप करते होंगे, मैं ठीक कह रहा हू।"

आचार्य ने सु घनी की डिबिया निकाली। उसको खोलते-खोलते मेरी ओर देखकर कहने लगे,—"नाराज न होना भाई—"

मैंने कहा—"नही-नहीं, नाराज होने की कौन-सी बात है।"

इसी समय एक धक्का लगा और उनकी सु घनी की डिबिया उलटकर गिर पड़ी—सारी सु घनी गिर गई। घबराकर खाली डिबिया उठाते हुए आचार्य जी बोले—"राम राम। सारी सु घनी गिर गई, अब क्या करू ?"

मैंने कहा—"क्या करेंगे, दुःख भी क्या है ? आराम-सुख सब तुच्छ है। मेरी ओर देखने मे आपको शान्ति मिलेगी।"

आचार्यजी गरज उठे—"रहने दो अपने मजाक को, बडे तुच्छ करनेवाले आये।—तुम्हें दुःख भी क्या है ? मै ठहरा बूढा आदमी —बिना सु घनी के इतना रास्ता कटना—हाय-हाय !"

देखा न आचार्य की बात। मेरे कष्ट से उनका कष्ट अधिक है, कारण उनकी सु घनी गिर गई है। कैसे स्वार्थान्ध हैं ये पुरोहितगण !

सु घनी के दुःख से आचार्य महाशय चुप और गुम होकर बैठ गये। उनकी बकवास बन्द हो गई। गाड़ी के भीतर फिर एक सन्नाटा छा गया। घर-घर घर-घर करती हुई गाड़ी उसी गति से चलती रही।

आखिर गाड़ी शहर के भीतर, चु गीघर के सामने, आकर ठहर गई। वहा से कर्मचारीगण आकर गाड़ी के भीतर परीक्षा कर गये। यदि हम भेड़ या बकरे होते तो यहा दक्षिणा देनी पड़ती, परन्तु

अफसोस कि हम आदमी थे, बिना महसूल दिये ही छुटकारा पा गये।

उसके बाद गाड़ी कई छोटी-बड़ी टेढ़ी-मेढ़ी सड़कों पर से घूमती हुई उस चौड़ी सड़क पर आ पहुंची, जो सीधी कासियारजारी को ले जाती थी। सड़कों पर लोग अवाक् होकर गाड़ी की ओर देख रहे थे। अखबार बेचनेवाले इधर-उधर दौड़ रहे थे।

साढ़े आठ बजे हम कासियारजारी आ पहुचे। सामने ही विराट् जेलखाना। उसका बड़ा भारी लोहे का फाटक देखकर मेरा खून ठण्डा हो गया। गाड़ी ठहर गई। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि शायद मेरे हृदय की क्रिया भी ठहर गई।

किसी प्रकार साहस को इकट्ठाकर मै उतरने को तैयार हुआ। दरवाजा भी उसी समय खुल गया। गाड़ी के अधेरे कमरे में से मैं कूदकर नीचे उतर पड़ा। दो पहरेदारों ने आकर दोनों तरफ से मेरे हाथ पकड़ लिये। दोनो ओर कतार बाधकर सेना खड़ी थी। बीच मे मैं चला। बाहर हमें देखने के लिए एक खासी भीड़ जमा थी।

: १३ :

उसी सेना की श्रेणी के बीच चलते हुए मुझे कुछ आराम का अनुभव होने लगा, मानों मैं स्वाधीन हू—कैदी नहीं हूं। परन्तु जब सीढ़ियों को पार करता हुआ उन अधेरे कमरों की ओर जा पहुंचा उस समय फिर विरक्ति और अवसाद ने आकर मुझे आच्छन्न कर लिया।

पहरेदार बराबर साथ आ रहे थे! आचार्य दो घण्टे बाद फिर मिलने की प्रतिज्ञा कर कहीं चले गये। उनको और भी न जाने क्या-क्या काम था?

हम जेलर के कमरे में आये। उनके हाथ में पहरेदार ने मुझे सौंप दिया। मुझे कुछ हसी आई—मेरे कैसे प्रियजन को इसने सौंप दिया है।

जेलर महाशय उस समय कुछ व्यस्त थे। पहरेदार से उन्होंने कहा—"जरा सब्र करो, मैं अभी समझ लेता हू।"

ठीक ही तो है,—जमा-खर्च के खाते का हिसाब न मिलाकर वह एक मनुष्य को खाते मे कैसे जमा कर सकते हैं? उस समय वह किसी और अभागे कैदी की भाग्यलिपि की ओर झुके हुए थे। पहरेदार ने कहा—"अच्छा, तब तक मैं भी अपने कागजों को सम्हाल लूं।"

कागजों का एक पुलिन्दा निकालकर पहरेदार उसी में तन्मय हो गया। मैं एक कोने में खड़ा रहा। लोहे की मोटी छड़ों के भीतर से आसमान नजर आ रहा था—धूप देखकर मालूम हो रहा था, मानों आकाश के शरीर को किसी ने रग दिया हो! उज्ज्वल नीला आकाश—अहा!

ऊपर की ओर मैं एक दृष्टि से देख रहा था। मैं सोच रहा था, यहा मैं खड़ा हू, और मेरी स्त्री और कन्या! वे भी इसी आकाश के नीचे हैं। न मालूम इस जीवन में उनके साथ कभी साक्षात् होगा या नहीं।

पहरेदार मुझे पास की एक छोटी-सी कोठरी में ले आया, उसमें बिलकुल अन्धकार छा रहा था! उसमे दो खिड़किया थीं, जो लोहे की जाली से घिरी हुई थीं। एक खिड़की के पास आकर मै बैठ गया।

कब तक बैठा रहा, यह ठीक याद नहीं। अकस्मात अट्टहास के शब्द से, मैंने पीछे की ओर देखा। यह क्या, एक ओर आदमी! उम्र उसकी कोई पचास से ज़्यादा ही होगी—पीठ झुक रही थी, बाल पक गये थे, फिर भी यह खूब मजबूत मालूम हो रहा था; आख और मुख पर विकट भाव था; उसकी ओर देखने से कुछ भय भी मालूम हुआ।

मैंने पहले उसे देखा नहीं था; परन्तु वह इसी कमरे में बैठा हुआ था।

आश्चर्य! यही क्या मृत्यु है—आज ऐसा भेष बनाकर मुझे तैयार करने के लिए आई है?

उसने कहा, "अर्जी, किस चिन्ता मे निमग्न हो। मै कब से बैठा हू और मेरी ओर देखा तक नहीं! क्या नाम है तुम्हारा?"

मैने उत्तर नहीं दिया। केवल उसकी ओर आखे फाड़कर देखने लगा!

उसने कहा—"मेरी ओर क्या देख रहे हो? मैं एक लगेज हू—स्टेशन की मुहर मेरे ऊपर लग चुकी है, अब केवल रेल आने-तक की देर है।'

वह कुछ रसिक मालूम पड़ा। मैंने पूछा—"इसका अर्थ?"

बड़ी जोर से कहकहा मारकर वह हस पड़ा। मैं डर गया। वह कहने लगा—"क्या इसका अर्थ भी नहीं समझे? मामूली बात है! छः हफ्ते बाद मुझे इस दुनिया के पार भेज दिया जायगा। इसीलिए अभी से मेरे ऊपर चालान की मुहर लग चुकी है। मतलब यह है कि छः घटे बाद तुम्हारी जो दशा होगी, छः हफ्ते बाद मेरी भी वही दशा होगी। अब तो समझ गये न—मैंने तुम्हारा कितना बड़ा मित्र हू।"

मेरी नसे सिकुड़ने लगीं।

वह कहता गया—"चुपचाप सोचने से कोई फल नहीं होगा, भाई। इससे सुनो, मैं तुम्हें अपनी कहानी सुनाऊ? वक्त भी कट जायगा—और, कहानी है भी मजेदार।"

उसने कहना शुरू किया—"चोरी-डकैती तो हमारा पीढ़ी-दर-पीढी से पेशा हो रहा है। परन्तु फासी केवल मैं ही चढाया जा रहा हूं। तक़दीर की बात है!

"छः वर्ष की अवस्था जब मेरी हुई तब मा-बाप मुझे छोड़कर उस लोक के यात्री बन गये, जिसका रहस्य अभी तक किसी को नहीं

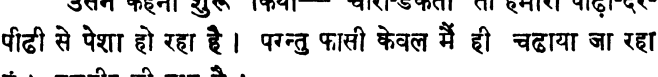

मालूम। जेब काटकर और बेवकूफों को और भी बेवकूफ बनाकर मैं मजे से अपना पेट भरने लगा। आखिर मेरा पुश्तैनी पेशा जो ठहरा।

"जाड़े के मौसिम मे जब चारों ओर बरफ से रास्ते और गलियां भर जाती हैं, उस बरफ पर से भी मै नगे पैर चला करता था। स्टेशन, होटल, ट्रेन हर जगह मैं जेब काटता फिरता था।

"पन्द्रह वर्ष की अवस्था मे मै पहले-पहल पकड़ा गया। पीठ पर कई कोड़े पड़े और दो-चार दिन की सजा हो गई। जब मैं जेल से लौटा तो मेरी कद्र बढ़ गई और मै दल का मुखिया बन गया।

"उसके बाद बड़े-बड़े कामों मे हाथ डालने लगा। शहर के मशहूर जौहरी की दूकान पर मय अपने दल के उपस्थित हुआ—सारी दूकान लूट ली, दो दरबानों को जान से मार डाला। हिम्मत भी बढ़ने लगी। लेकिन, विभीषणों का अभाव कहीं नहीं है। दल के एक विश्वासघाती ने हम लोगों को पकड़वा दिया। सात वर्ष तक जेलखाने की हवा खानी पड़ी। फिर बाहर निकला। कुछ विशेष प्रमाण नहीं था, नहीं तो कभी जेल के बाहर पैर रखने की नौबत ही नहीं आती! उस अभागे स्वार्थी विश्वासघाती पर बड़ा क्रोध आया।

"जब मुकदमा खत्म हुआ, उस समय, वह अदालत के बाहर खड़ा था। मैं उसकी ओर एक तीव्र-दृष्टि डालता गया। उस दृष्टि में आग बरस रही थी, वह उसकी हड्डी-हड्डी में घुस गई। डर से उसका मुंह सूख गया। खैर, सात वर्ष बाद मैं फिर बाहर निकला।

"दो दिन इधर-उधर घूमते बीत गये। एक-दाना तक पेट में नहीं पड़ा। प्रतिहिंसा के लिए भारी आग जलने लगी थी।

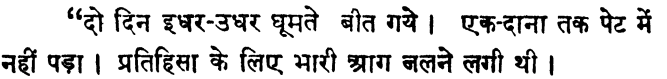

"रात को खिड़की तोड़कर एक होटल मे घुसा। वहा खूब पेट भरकर खाया। चुपचाप—किसी को कुछ मालूम तक न हुआ!

"सात-आठ दिन बाद दल के दो-चार लोगो से मुलाकात हुई। उन्होंने चोरी छोड़ दी थी। कोई नौकरी करने लगा था, कोई खेती। सब कायर थे।

"नया दल बनाया। चुन-चुनकर जवान और हठीले आदमी भर्ती किये।

"उसके बाद खूब समारोह से काम चलने लगा। रोज लूट, रोज़ जीत, रोज नये-नये मजे! आनन्द का फव्वारा छूटने लगा।—किन्तु फिर भाग्य पलटा। दल के लोग पकडे जाने लगे। दल टूट गया। काम बन्द हो गया। क्रोध से मैं उन्मत्त हो गया।

"उसके बाद, एक दिन वह पुराना विश्वासघाती सड़क पर मिल गया। मुझे देखकर वह कापने लगा। मैंने उसके बालो को अपनी मुट्ठी मे पकड़ लिया। 'क्यों? आज?'

"वह गिड़गिड़ाकर कहने लगा—'माफ करो सरदार!'

"मैंने कहा, 'विश्वासघाती' को मैं माफ नही कर सकता।"

"उसने कहा, 'मैं तुम्हारा गुलाम हू।"

"विश्वासघाती गुलाम को मैं ऐसी ही शिक्षा देता हू।" कहकर मैंने उसकी पीठ पर एक जोर से लात मारी। वह पाच हाथ दूर जा गिरा। मु ह से खून उगलने लगा। मैने कहा—'उठ, चल।'

"उसे मैं ले चला। तब—ओह, मैं एक राक्षस की तरह हो गया था। मेरा ऐसा सुन्दर गरोह, पुराने साथियों का दल—केवल इसी विभीषण के कारण टूट गया! शैतान!"

"मैंने जेब से छुरी निकाली। उसके दोनों कान काट दिये। वह बेहोश होकर गिर पड़ा। मेरे सिर मे आग-सी जल रही थी। मैं वहा से भाग खडा हुआ।

"उसके बाद पुलिस मे जाकर उसने इजहार दिया और एक दिन अस्पताल मे वह मर गया। मैं भी पकड़ा गया। मुझे फासी का हुक्म हो गया है। ठीक ही तो हुआ है। क्या कहते हो? एक तरह से मैंने ही उसकी जान ली है। खैर, जनता के लिए मुझे चिन्ता नही है। चोरी करते-करत जी भी कुछ ऊब गया था। मामूली चोरी मे मुझे कभी आनन्द भी नहीं मिलता। काफी अक्ल खर्च करता था। वैसे अक्लमन्द और हिम्मतवाले साथी भी अब कहा मिलते हैं? इसी-लिए अब जीवन में कोई विशेष आकर्षण नहीं है। मरने के पहले विश्वासघाती को अपने हाथ से दण्ड दे दिया, यह भी कुछ कम आनद की बात नहीं है। और भी एक-दो चोरी के किस्से सुनाता हू। समझ जाओगे कि मैं कितना अक्लमन्द था। मेरी ऐसी अक्ल को फासी की रस्सी मे झूलना पडेगा, यह एक अफसोस की बात जरूर है। पर, खैर देश का दुर्भाग्य।"

उसकी बाते सुन कर मुझे रोमाच हो रहा था। इस पिशाच का, इस राक्षस का साथ न जाने कब छूटेगा?

उसने कहा—"तुम बडे सीधे आदमी मालूम होते हो। राम-राम, फासी पर जा रहे हो। अब भी तुम्हें अफसोस हो रहा है। इसी मे तो मजा है, यह नहीं मालूम? मौज करो, आनन्द करो, लोग जानेगे कि हा, फासी पर भी यह आदमी डरता नहीं है। मृत्यु इसके लिए खेल है। देख कर सब अवाक् और स्तभित हो जायगे। बहादुर

कहेगे। मुझे देखो न ? कैसे मजे मे हू। आखिर अफसोस करने से कुछ नतीजा हासिल होगा ही नहा।"

मैंने कहा—"आप सचमुच महाशय हैं ?"

क़हक़हा मार कर वह फिर हस उठा। उस हसी के विकट शब्द से सारा कमरा गू ज उठा। उसने कहा—"ओहो 'महाशय', आप लोग सफ्रेदपोश हैं, 'महाशय' हैं, यह तो मुझे याद नहीं था। लेकिन महाशयों को फासी दी जाती है – यह बडे अचम्भे की बात है !"

उसकी बातों में काफी व्यग था। मै चुप रहा। वह कहने लगा—"क्या आपको केवल आचार्य के आने तक का विलब है। अच्छा, आप तो ज़मींदार हैं। फासी पर चढने जा रहे हैं। अपना यह सुन्दर कोट क्या व्यर्थ ही खराब करेगे ? मुझे दे दीजिए ! कुछ जाड़ा भी कटेगा, और नहीं तो बेच-बाच कर चुरुट मगाने की तदबीर करू गा।"

मैंने कोट खोल दिया ! ठण्ड से शरीर कापने लगा। उसने कहा—"आप अमीर आदमी हैं। यह जाड़ा बर्दाश्त नही कर सकेगे। रहने दीजिये, आप पहन लीजिए, अपने कोट को।"

उसने कोट को मेरी ओर बढा दिया। मैने कहा—"नही बर्दाश्त कर लू गा, कोट आप ले लीजिए !"

खिड़की के पास आकर वह कोट को अच्छी तरह देखने लगा—कुछ देर तक उलट-पलट कर उसे देखता रहा, फिर बोला, यह तो बिलकुल नया मालूम होता है। खैर, ठीक है, आपकी कृपा से छः हफ्ते तक चुरुट और तम्बाकू का अभाव नहीं होगा। धन्यवाद, महाशय ! कुछ बुरा न मानना, हम गरीब ठहरे। बाते करना तो आता ही नहीं।"

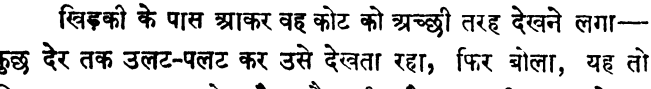

इसी समय जेलर भीतर आये ! मुझको एक पहरेदार के जिम्मे कर दिया और उसको दो पहरेदारों के हाथ में देकर बाहर चले गये।

हम लोग भी बाहर आये। बाहर आकर उसने कहा—"भूलना नही महाशय, यहा यही आखरी मुलाकात है, फिर छः हफ्ते बाद मिलेगे। वहा आप मेरा इन्तजार करना।"

उसकी बातों को सुन कर मेरा हृदय काप उठा। क्या कहता है यह ? पागल है या बेवकूफ ?

: १४ :

वह था बड़ा मजे का आदमी। मेरा कोट लेकर साफ चलता बना।

क्या मैने दान कर दिया ?—नहीं, ठीक दान तो नहीं किया। मैने सोचा वह मजाक कर रहा होगा, फिर मुरव्वत के खयाल से वापस न ले सका।

पक्का और पुराना चोर है! पैरो से जिसको कुचल सकता हूँ वह मुझे मित्र के नाम से सम्बोधन कर गया ?

मेरा हृदय क्रोध से क्षुब्ध हो गया। मृत्यु मेरे सिरहाने खड़ी है। अभी निर्दयी की भाति वह मुझे पीस डालेगी। अभी तक धनी सम्प्रदाय का अहकार मेरी हड्डियो मे भरा है। मूर्ख हू मैं! बेवकूफ हू!

फासी की डोरी धनी और निर्धन का विचार न करेगी। जिस राज्य मे जा रहा हू, वहा धनी और निर्धन का विचार न होगा।

जो डोरी उसके गले मे पडेगी, वही डोरी मुझे भी पार पहुचा-येगी। मुक्ति देगी। हा, वह मेरा मित्र ही तो है। परम-मित्र है!

: १५ :

वायुहीन रुद्ध एक छोटे-से कमरे मे फिर मै बन्दी हू। बन्दी हो गया हू, इसलिए क्या प्रकाश और हवा पर मेरा कोई अधिकार नहीं है ? विचार के नाम पर मनुष्य, मनुष्य के प्रति यह अन्याय क्यों करता है ? यदि सजा देना ही उनका उद्देश्य हो तो इससे भी कम खर्च मे और भी सरल उपाय का तो अभाव नहीं था। वही पुराने युग मे जो होता था एक थैली के भीतर बन्दकर नदी मे डुबा देने से ही तो बहुत शीघ्र काम तमाम हो जाता। इतनी जबर्दस्त तैयारी और कडे पहरे की बहुत सी मेहनत बच जाती।

कमरे मे बिस्तर नही था। मैंने चौकीदार को बुलाकर बिस्तर लाने के लिए कहा। वह अवाक् होकर मेरी ओर देखता रहा—मानों आसमान से गिरा है। शायद उसे आश्चर्य हो रहा था कि जो शख्स छः घण्टे बाद फासी पर चढ़ा दिया जायगा, उसे बिस्तर की क्या जरूरत ?

जो हो, उसी समय कमरे मे जेल के अध्यक्ष ने बिस्तर लगवा दिया। वह बडे दयालु हैं। मरते समय कम-से-कम उनकी दया की बात तो सोचता हुआ मरू गा। कमरे के दरवाजे पर एक पहरेदार खड़ा रहा, जिससे बिस्तर की चादर से मैं अपनी फासी अपने आप न लगा लू—सरकार के जल्लाद को कहीं धोखा न दे बैठू !

: १६ :

ठीक दस बजे हैं।

मुझे मेरी की याद आ रही है। अभागिनी कन्या मेरी! छ. घण्टे बाद मैं कहा रहूगा और यह पृथ्वी कहा रहेगी? अस्पताल की मेज पर मेरा प्राणहीन शरीर पड़ा रहेगा। देह की चीरा-फाड़ी कर फिर वे सास लेगे। मेरी बोटी-बोटी काटी जायगी। हाय, मेरी, तुम्हारे पिता के जीवन का यह परिणाम है।

फिर भी आज इनके व्यवहार से यह नही कहा जा सकता कि यह मुझ से घृणा करते हैं। करुणा से सबका मन भरा हुआ है। मेरी सेवा मे कुछ भी त्रुटि नही हो रही है। फिर भी ये मुझे जीने न देगे! करुणा—परन्तु कैसी निर्मम-करुणा है यह! मेरी हत्या ये अवश्य करेगे। किसी प्रकार भी नही रुक सकते।

बेचारी मेरी! अभागिनी बेटी! पिता के आदर से तुम घिरी हुई थी। पिता से एक चुम्बन पाकर तुम तृप्त हो जाती थी। जब तुम्हारे केश के गुच्छों को लेकर मैं आदर से मरोड़ा करता था, तो तुम्हारे नरम और लाल होटों के भीतर से हसी का फव्वारा निकल पड़ता था। आनन्द की हसी सारे गृह म एक सगीत का मूर्च्छना भर

देती थी। उसके बाद रात को सोने से पहले अपने पिता के साथ तुम हाथ जोड़कर बैठ जाती थी। तुम्हारा वन्दना-गान सारे दिन के परिश्रम और श्राति को हलका कर देता था। अहा, तुम्हारी आराधना कैसी आवेग-पूर्ण थी। ऐसा सुख का साम्राज्य मेरा! हाय, आज वह सब स्वप्न—में परिणित हो गया। हाय, प्यारी बेटी। उस प्रकार तुम्हें छाती से लगाकर कौन तुम्हारे मुख को असख्य चुम्बनों से भर देगा—उस तरह तुम्हारा कौन आदर करेगा? सब के छोटे-छोटे बच्चे अपने-अपने पिता की स्नेह-पूर्ण गोद मे बैठकर किसी मेले और तमाशे में हसते हुए जायगे, उस समय तुम्हारी आखों मे वेदना के आसू डबडबायगे—एक हृदय-भेदी वेदना तुम्हारे सुन्दर मुख को म्लान कर देगी। व्यथित आखे इधर-उधर अर्थहीन दृष्टि दौड़ायगी। नवः वर्षारम्भ और अपने जन्म-दिन पर तुम कोई उपहार न पाओगी, किसी का आदर तुम्हारे हृदय का स्पर्श न करेगा। हायरी मेरी अभागिनी कन्या, तुम्हारे फूल के समान प्राण को क्या कोई भी तृप्त न करेगा? पितृहीन, अनाथिनी मेरी।

यदि वे जूरी एकबार मेरी को देख लेते, तो शायद यह मृत्यु-दण्ड देने के पहले उन्हें उसका भी ख्याल होता। उसके म्लान-नेत्रो को ओर देखकर उनका कठोर चित्त अवश्य चचल हो जाता, इसमे कोई सन्देह नही है—नही, कोई सन्देह नहीं है। मेरी के लिए मेरा प्राण भी शायद बच जाता।

मेरी। जब वह बड़ी होगी, जब होश सभालेगी, सब बातें समझने लगेगी तब मै कहा रहूगा? उस समय तो मेरा नाम पेरिस की कलङ्क-स्मृति मे लिखा होगा। मेरा नाम सुनकर क्या उसका प्राण

काप न उठेगा ! मेरा नाम सुनते ही लज्जा से उसका अन्तःकरण फटने लगेगा ; लोगों की घृणा उसको भी हमेशा जलाती रहेगी। मेरी ! प्यारी बेटी मेरी। पिता के नाम पर सहानुभूति के दो बूंद आसू क्या तुम न डालोगी—अथवा घृणा की आग तुम मेरे नाम पर बरसाओगी ? नहीं, नहीं, मेरी, तुम दो बूंद आसू से मेरा तर्पण करना, मैं तृप्त हो जाऊगा—केवल दो बूंद आसू। हाय भगवान, कौन-सा अपराध मैंने किया है, ऐसा कौन-सा महापाप मैंने किया है, कि समाज इस प्रकार निर्मम और निष्ठुर-भाव से मुझे पीस डालना चाहता है ?

आज का सूर्य जब अस्त हो जायगा, तब मैं कहा रहूंगा ? इस पृथ्वी का सारा अस्तित्व मेरे लिए उस समय लोप हो जायगा। आज मेरे जीवन का अन्तिम दिन है। क्या यह सच है—अथवा यह स्वप्न है।

बाहर यह कोलाहल कैसा हो रहा है ? शायद मेरी मृत्यु देखने के लिए लोग दौडे आ रहे हैं। कुतूहली दर्शक, स्पर्धित प्रहरी, सज्जित आचार्य—मुझे देखने के लिए सबका आग्रह एक साथ जग उठा है। मत्यु ! तुम सचमुच आज मुझे ग्रहण करोगी ? मुझ को ? —जो मैं इस समय बैठा हुआ हूं, सास ले रहा हू, बाते सुन रहा हूं, वायु का स्पर्श अनुभव कर रहा हू, वही मै ! मर जाऊगा।

: १७ :

ये बाते क्या मै नहीं जानता ? हा जानता हू। प्लेदीग्रीव्ह के पास से जा रहा था—वह बहुत दिनो की बात है। उस समय दिन के ग्यारह बजे थे। अचानक मेरी गाड़ी रुक गई।

रास्ते पर हजारों की भीड़ इकट्ठी थी। गाड़ी में से मैने सिर निकालकर देखा, जवान-बूढ़ों से सारा रास्ता खचाखच भरा है। चारों ओर अनगिनती खोपड़िया नजर आती थीं। दीवारों पर, छत पर, पेड़ों की डालियों पर—कोई भी जगह खाली न थी। दूर पर फासी का तख्ता भी नजर आता था। फासी का सब सामान तैयार था।

आज भी वही दिन है। परन्तु आज मैं दर्शक नही हू। आज लोगों की भीड़ मुझे देखने को इकट्ठी हुई है! वैसी ही भीड़ जमेगी।

केवल एक डोरी को अवलम्बन बनाऊगा—साथ ही पलक मारते-न-मारते एक अतल-स्पर्श अधकार के भीतर घुस जाऊगा। विराट् अन्धकार, उसके बाद ?—

एक पत्थर भी यदि मिल जाता तो अपने सिर को यहीं फोड़ लेता।

माफी। अरे मुझे माफी दे दो, मुझे क्षमा करो!—शायद माफी

मिल भी जाय। राजा को दया आ जाय तो—शायद माफी की खबर लेकर दूत आता होगा। आओ दूत। जल्दी आओ! यह सारा अन्धकार अचानक गायब हो जायगा। एक तीव्र दीप्त मुक्त-प्रकाश के राज्य मे मैं प्रवेश करूंगा! जय के उल्लास से मेरा सारा मन प्रफुल्ल हो जायगा।

मुझे प्राणों की भिक्षा दे दो। स्नेह और ममता मे भरी हुई यह सुन्दर पृथ्वी, मेरा प्राण इसे छोड़ना नहीं चाहता। मेरी रक्षा करो। गर्म लोहे से मेरे शरीर पर छाप लगा दो, मुझे कही जाने मत दो—बीस वर्ष, पच्चीस वर्षतक मुझे जेल मे बन्दकर रक्खो। केवल इस आसमान, हवा और सूर्य के प्रकाश से मुझे वंचित मत करो। क़ैदी—वह भी चलता है, सोचता है, बाते करता है, वह भी सुखी है। केवल इस प्राण को न लो, भीख दे दो। बस, और कुछ नहीं चाहता।

———

: १८ :

आचार्य लौट आये। सफेद बाल, नम्र प्रकृति और मीठी-मीठी बातें। देखने से श्रद्धा होती है।

आज सवेरे भी मैंने उन्हें कैदियों मे ज्ञान वितरण करते देखा है। परन्तु उससे मेरा क्या लाभ? उनकी बातो म मेरा जी नहीं लगता। पानी जैसे काच पर से फिसल जाता है, उनकी बाते भी मेरे मन से उसी प्रकार फिसल जाती थीं।

फिर भी उन को देखकर कुछ धीरज मिला। चारों ओर के इस वीभत्स दृश्य के भीतर उनसे कुछ कोमलता मालूम पड़ी।

हम दोनो बैठ गये—वह कुर्सी पर और मैं अपनी जीर्ण शय्या पर!

उन्होंने कहा—"भाई!"

उनके सम्बोधन ने मेरे प्राण को शीतल कर दिया।

उन्होंने पूछा--"क्या ईश्वर पर तुम्हें विश्वास है?"

मैंने कहा, "है।"

"यह उदार कैथोलिक धर्म--क्या इस पर तुम्हारी श्रद्धा है?"

मैंने उत्तर दिया, "अवश्य।"

"तो सुनो," आचार्य कहने लगे। क्या कहने लगे, यह मुझे याद नहीं, कब तक कहते रहे, यह भी मैं नहीं जानता। अकस्मात् उन्होंने कहा, 'क्या ?' मैं दूसरी ओर देख रहा था—चौंक उठा। मैं उठ खड़ा हुआ और बोला, "कृपया मुझे एकांत में रहने दीजिये। मुझे कुछ अच्छा नहीं लग रहा है।"

"तो अब मैं आऊं, कहो ?"

"मैं कहला भेजूंगा।"

वह उठ खड़े हुए, मृदुकण्ठ से उन्होंने उच्चारण किया "नास्तिक !"

नास्तिक !—नहीं, चाहे मैं कितना ही नीच क्यों न होऊं परन्तु नास्तिक नहीं हूं। भगवान जानते हैं, उनके प्रति मेरा विश्वास कितना गम्भीर है। परन्तु यह आचार्य नई बात क्या सुनायगा। मेरी दुःखी आत्मा को तृप्त करने की क्षमता इसमें कहां है ? इसकी सामर्थ्य ही कितनी है ? तनख्वाह लेकर दो-चार रटे हुए शब्दों के उच्चारण से कहीं किसी को शांति मिल सकती है ?

खूनी और डाकुओं सामने रटे हुए वाक्यों को बकना जिसका पेशा है, क्षुब्ध-आत्मा को शान्त करने की चेष्टा उसके लिए धृष्टता नहीं तो क्या है ? भगवान के नाम पर यह कैसी धोखेबाजी है ? विधाता के नाम पर यह कैसा परिहास है ? फिर भी राजधर्म-द्वारा अनुमोदित होकर यह प्रथा कितने दिनों से प्रचलित हो रही है ! अफसोस !!

परन्तु यह बूढ़ा आचार्य ! इसका भी दोष क्या है ? इसकी शिक्षा ही क्या है—ज्ञान भी कितना-सा है ? तुच्छ इने-गिने रुपयों के

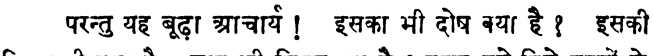

लोभ में वह यह काम कर रहा है ! यही उसकी जीविका का अव लम्बन है। नही तो यह पेट कैसे भरेगा ? मुझे इस प्रकार की अश्रद्धा दिखानी न चाहिए। परन्तु उपाय भी क्या है ? मेरी सास के स्पर्श से चारों दिशाये जली जा रही हैं। मुख से विष निकल रहा है। मै क्या करू, भवितव्य कठिन है।

पहरेदार मेरे लिए नाना प्रकार के भोजन ले आया। यही मेरे इस जीवन मे आखिरी खाना होगा।

खूब तो खा चुका। ऐसी तुच्छ घृणा, ऐसी हीनता ! नही, यह मेरे गले के नीचे नहीं उतरेगा !

: १६ :

सिर पर टोपी ओढे एक आदमी अकस्मात् आकर खड़ा हो गया। कुछ व्यस्त भाव, किसी ओर भी लक्ष्य नही है! हाथ में गज का फीता और बगल मे कागजों का बडल! आते ही वह दीवार नापने लगा। 'अच्छा पाच फुट! यहा बदलना पडेगा,' इत्यादि बाते वह एक पहरेदार से कहने लगा और भी न जाने क्या-क्या बकने लगा!

पहरेवाले से सुना, वह एक ठेकेदार है। जेलखाने का नया संस्कार होगा, वह इसीका नाप ले रहा है।

काम खतम करके उसने मुझसे कहा,—"आपको क्या आज फासी होगी?"

मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह एकटक मेरी ओर देखता रहा।

उसने कहा—"छः महीने के बाद इस जेल को पहचानना मुश्किल हो जायगा! सब रद्दोबदल हो जायगा, तब देखने में बहुत सुन्दर हो जायगा।"

अर्थात् उसके कहने का साराश यह था—"मैं बड़ा ही अभागा हूं कि नई जेल देखना मेरे भाग्य में लिखा नहीं है—!"

उसके मुख पर एक सूखी हसी भी दिखाई दी। पहरेवाले ने

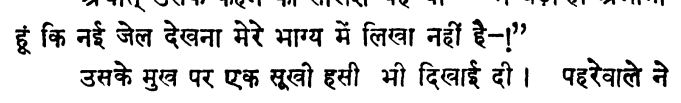

उससे कहा,— "यहा खडे होने का हुक्म नही है। आपका काम हो गया तो बाहर चलिए।"

वह चला गया और मैं—जिस पत्थर की दीवार को वह फ़ीते से नाप रहा था, उसी पत्थर की दीवार की भाति निःशब्द बैठा रहा।

इस समय एक और मजेदार बात हुई।

पहरा बदला। नया पहरेवाला आया। उसका चेहरा भयानक, स्वर तीव्र, मानों यमदूत ही हो।

पहरेवाले ने कहा, "क्योंजी तुम्हारे मन मे कुछ दया-माया भी है या नही?"

मैंने कहा, "नही।"

मेरे स्वर मे एक तीक्ष्णता थी।—फिर भी वह हटने वाला थोडे ही था! उसने कहा, "एक बात कहता हूं सुनो।"

मैने कहा, "मै अधिक रसिकता नहीं सह सकता!"

उसने कहा, "मैं अत्यन्त दुखी आदमी हू, भाई! बड़ा ही अभागा हूं। यदि तुम मुझपर कुछ कृपा करो तो सदा के लिए तुम्हारा कृतज्ञ रहूगा।"

"सदा के लिए! 'सदा' तो मेरा सूर्यास्त के पहले ही खतम हो जायगा।" मैंने कहा, "क्या तुग पागल हो? देखते नहीं, मै मरने जा रहा हू। इस समय मैं किसी का क्या कर सकता हू!"

फिर भी वह छोड़ने वाला कब था—बोला, "अजी, सुनो भी तो!" उसके बाद चारों ओर देखकर धीरे-धीरे उसने कहा, "देखो भय्या, मेरा सारा सुख तुम्हारे ही हाथों मे समझ लो। बड़ा ही ग़रीब हूं मैं—यह काम बड़ी मेहनत का है—और तनख्वाह भी कम है,—

उसपर अपने पास एक घोड़ा भी रखना पड़ता है। नौकरी मे सुख तो ऐसा ही है। इसीलिए भाई साहब, कभी-कभी मैं लाटरी का टिकट खरीद लेता हू! आखिर जीवन मे कुछ करना तो चाहिए न! परन्तु देखो न, सात-आठ वर्ष मे लाटरी के टिकटो मे इतना रुपया खर्च कर डाला, परन्तु एक पैसा भी लाभ न हुआ! अगर ७६ नम्बर का टिकट खरीदता हू, तो ७७ नम्बरवाला बाजी मार लेता है, और ७७ नम्बर खरीदता हू तो ७६ या ७८ नम्बरवाले की तकदीर खुल जाती है। खैर, तो, अब मैने क्या सोचा है, जानते हो?" कहकर उसने मेरी ओर देखा।

मैंने कहा—"क्या सोचा है?"

उसने कहा–"शायद तुम्हारे द्वारा मेरी कुछ सुविधा हो जाय।"

मैने ताज्जुब से उसकी ओर देखकर कहा—"मेरे द्वारा सुविधा!"

उसने कहा, "हा, सब तुम्हारे ही हाथ में है। देखो मर जाने के बाद मनुष्य भूत, भविष्य, वर्तमान सब देख पाता है! और तुम तो कुछ घण्टे बाद मरोगे ही। इसीलिए तो कह रहा था कि क्या जानते हो, मुझे यदि उस समय ठीक-ठीक टिकट नम्बर बतला दो तो उसी नम्बर का टिकट खरीदू! बस, रातों दिन बड़ा आदमी बन जाऊ। इस नौकरी को छोड़ दूं और खूब गुलछर्रे उड़ाऊ।—देखो भूत से मैं डरता नहीं। समझे न? कोई बाधा नही है। मेरा नाम कासेपायिकर है। बी नम्बर बारक, २६ नम्बर का पलग—याद रहेगा न? तो आज ही रात को आकर बतला जाना। हा भय्या, यह उपकार तो तुम्हें करना ही पडेगा!"

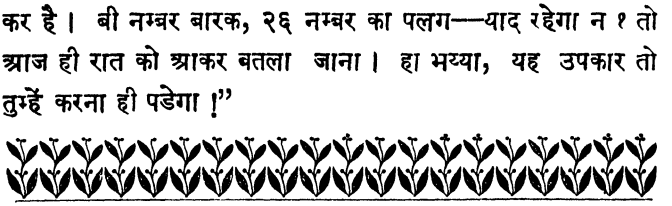

मैं उसकी बात का उत्तर न देता, प्रवृत्ति भी नहीं थी। परन्तु एक उन्मत्त आशा मेरे मन मे जग उठी—एक बार आखरी कोशिश। मैंने कहा—"देखो धन चाहते हो ?"

"हा-हा, और कह क्या रहा हू ?"

मैंने कहा—"अच्छी बात है। मैं तुम्हें बहुत धन दू गा, यदि एक काम कर सको।"

उसकी आखे लाभ से चमक उठी। उसने कहा—'कहो अभी करू गा—चाहे जैसा भी सख्त काम हो, पीछे नहीं हटू गा।"

मैंने कहा—"केवल हम दोनों को आपस मे पोशाक बदलनी होगी।—बस और कुछ नही।"

"बस, यही काम! ओह अभी करता हू।" यह कहकर वह अपने कोट के बटन खोलने लगा।

मै उठ खड़ा हुआ। छाती धड़कने लगी। एक मिनिट का भी विलम्ब नही—नहीं तो सब नष्ट हो जायगा। ओह भगवान—धन्य हो तुम। पल भर के अन्दर कल्पना-क्षेत्र के सामने मैने देखा, मेरे सामने सब दरवाजे खुले हुए हैं—कहीं भी बाधा नहीं है—मुक्त-आकाश के नीचे मैं खड़ा हूं—सिर के ऊपर से पक्षियों का दल गीत गाते हुए उड़ रहा है। स्निग्ध शीतल वायु का स्पर्श भी मानो मैने अनुभव किया। वह—एक जीवन ही नया था!

अकस्मात् पहरेवाला रुक गया। कहा—"ओह, समझ गया तुम्हारा मतलब, भागना चाहते हो ?"

गले को साफकर मैंने कहा, "और तुम्हें रुपया काहे का दू गा ?"

वह फिर अपने कोट के बटन लगाने लगा। मेरे हृदय के भीतर एक बिजली दौड़ गई—सिर का खून गर्म हो गया।

उसने कहा—"नहीं, यह कैसे हो सकता है? यह काम मैं नहीं कर सकता। यह झंझट है--मरकर ही तुम नम्बर बतला देना, इस प्रकार से भागकर—अरे, राम-राम!"

मैं बैठ गया। पैर काप रहे थे। आशा नहीं है, कोई आशा नहीं है। निराशा की गम्भीर वेदना मे सास तक रुकने लगी।

: २० :

दोनो हाथो से मु ह ढककर मैं बैठा था—अतीत की सारी बाते याद आ रही थी। स्वप्न की भाति विचित्र और मधुर किशोरावस्था की बाते। दुर्भावनाये और दुश्चिन्ताओं का भारी काटा, साथ ही वे बाते—मानो शुभ्र-सुन्दर फूलों का एक ढेर।

प्रफुल्ल-मुख, निश्चिन्त हृदय उत्साह से भरा हुआ जीवन—वे केसे मधुर दिन थे। बगीचे मे दौड़-धूप, साथियों का निर्मल प्रेम, वह एक सुख का साम्राज्य। उसके बाद किशोरावस्था के स्वप्न-राज्य मे नवीन प्रकाश का उन्मेष। निराले कानन मे वह मेरी तरुणी बाला।

बड़ी-बड़ी आखे, लम्बे केश, गोर-वर्ण, गुलाबी अधर—अपूर्व रूपवती पेया! बगीचे मे हम दोनो खेलते थे—हसी, गीत, गपशप।

कलह का भी अन्त न था। उसका स्वभाव था शात और मधुर। घोंसले से पक्षी चुराकर जब मै धीरे-धीरे पेड़ पर से उतरता था, तब उसकी म्लान आखे मेरी ओर देखती रहती थी। उस दिन उसने कातर-भाव से कहा, "क्यो तुम घोसले से छोटे-छोटे बच्चे चुराते हो? अहा! तुम बड़े निर्दय हो।"

मैंने ऐसे वीरत्व का कार्य किया! कहा तो मेरी प्रशसा करनी

चाहिए, और यह कर रही है मेरा तिरस्कार। क्रोध से उस पत्नी को उसी के मुंह पर दे मारा। घर लौटकर जब उसकी मा ने पूछा, "तेरे मुंह पर यह काहे का दाग है?" झट से उसने उत्तर दे दिया, "गिर पड़ी थी।"

उसके बाद कितने ही दिन वह साथ-साथ नदी-किनारे घूमती रही है। गति कभी तो धीरे और कभी तेज। तीर पर नदी की तरगों को देखते थे--सध्या उतर आती थी, चारो ओर धीरे-धीरे अधकार से अस्पष्ट होने लगता था। मृदु-सगीत की भाति नदी का जल पछाड़ खाकर किनारे पर आ गिरता था। हमारे कण्ठ का स्वर भी मृदु हो जाता था। कितनी ही बाते थीं—देश की, विदेश की, प्रेम की, प्रणय की। कभी-कभी लज्जा से उसका मुख लाल हो उठता था—नहीं, लाल नही, शायद गुलाबी।

वह गरमी के दिनों की बात है। शाम के वक्त बगीचे मे बादाम के पेड़ के नीचे हम बठे थे।

अचानक पेया के हाथ से रूमाल गिर पड़ा। मैने उसे उठाकर उसके हाथ मे दिया—स्पर्श से हाथ काप उठा।

पेया कह उठी—"आओ जरा दौड़ें।" केश के गुच्छे झालरों की भाति झूल रहे थे, नाच रहे थे—गर्दन पर कुछ अजब लाल रग था। लाल बादलों पर मानों बिजली की एक रेखा थी।

एकाएक वह बैठ गई। ललाट पर मोती की भाति पसीने की बूंदे। मैं उसकी बगल मे आकर बैठा। वह हाफ रही थी। सास कुछ रुक रही थी। मैने उसकी ओर देखा।

पेया ने कहा, "कुछ पढो। अभी उजेला है—तुम्हारे पास किताब हो तो निकालो, जेब मे होगी ?"

मेरी जेब मे एक उपन्यास था। मैंने उसे निकाला। मेरे कधे पर सिर रखकर वह उसे पढने लगी। पढने-लिखने मे वह बहुत तेज थी, उसकी बुद्धि भी अत्यन्त तीव्र थी।

कुछ देर पढने के बाद उसने मेरी ओर देखकर पूछा—"तुम सुन भी रहे हो या नही ?" सचमुच मैं केवल उसकी ओर देख रहा था—सुनने की फुर्सत ही कहा थी।

उसके सिर उठाते ही हम दोनों का केशाग्र मिल गया। उसकी सास का स्पर्श मैंने अपने गालो पर किया। साथ ही हम दोनों के ओठ भी मिल गये।

उसके बाद फिर जब पुस्तक को खोला, उस समय आसमान पर तारिकाओं का दल हम दोनों को देखकर हस रहा था।

घर लौटकर, वह अपनी मा से बोली—"मा आज हम दोनो बहुत दौडे हैं।" मुझ से कुछ कहा न गया। उन्होंने पूछा, "तुम चुप क्यो हो ?"

चुप क्यों हू ? आनन्द और हर्ष की धारा मेरे हृदय मे बह रही थी। उस स्निग्ध-सुन्दर सध्या की बात इस जीवन मे कभी भूल नही सकता।

यह जीवन—साय, अब कितनी देर को है ?

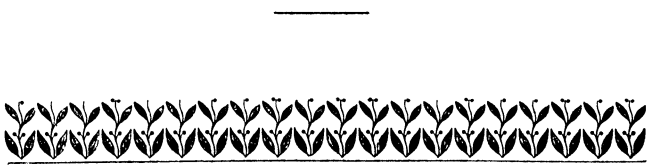

: २५ :

मालूम नहीं क्या बजा है। सिर के अन्दर चिन्ताओं की राशि कोलाहल कर रही थी।

अपराध की बात सोचते ही काप उठता हू—परन्तु, इस अनुताप से अब क्या लाभ है।

सजा के पहले पश्चात्ताप का जो बोझ हृदय को भारी कर रहा था, वह अब कहा है? मृत्यु की बात को छोड़कर और सोचने का अवसर भी कहा है? अतीत की बात सोचने पर भी फासी की रस्सी आखों के सामने नाचती है। वह सुन्दर शैशव, वह मधुर किशोरावस्था—आह, आज इस तरह फासी के तख्ते पर लोट पड़ेंगे? अतीत और वर्त्तमान के बीच एक-रक्त सागर का व्यवधान रह गया। जो मेरी जीवनी पढेगा, शायद घृणा से नाक-भौं सिकोडेगा। परन्तु सचमुच ही क्या मै ऐसा ही बुरा हू? नही, कभी नही।

कुछ ही घण्टों मे सारी चिन्ताओं और भावनाओं का अन्त हो जायगा, फिर भी उन दिनो का बीते अभी बहुत समय नही हुआ, जब नदी के किनारे पेड़ों की छाया म, ऊपर से झडे हुए पत्तो को रौदता हुआ मैं स्वच्छन्द घूमता था।

मेरे इस रुद्ध कमरे के पास ही अनेक घर अभी तरुण-तरुणियो के मुख-गु जन और शिशुओं के उच्छ्वास से पूर्ण होंगे। आशा-निराशा और सुख-दुख का भार लेकर अभी भी नर-नारी बाहर चल रहे होगे। फेरी वाला चिल्लाकर फेरी दे रहा होगा। किसी कु ज मे युवक अपनी प्रियतमा को आलिगन मे आबद्ध कर प्रगाढ प्रेम के साथ चुम्बन कर रहा होगा। जीवन का फव्वारा चारो ओर छूट रहा होगा। और मै ?—

पुरानी बाते ही याद आती हैं। नौटरडम मे घटा देखने आये थे। उस समय मैं बालक था। अधकार मे टेढी-मेढ़ी असख्य सीढ़ियों को पार करते-करते मेरे सिर मे चक्कर आ गया था। ऊपर चढकर देखा, सारे पेरिस शहर को मानों किसी ने गलीचा बनाकर पैरा के तले बिछा दिया है।

उसके बाद घण्टे को देखा। कितना भारी घण्टा था। मैं शहर देखने मे तन्मय था। उस ऊचे मीनार पर से नीचे सड़क पर चलने वाले लोग बिलकुल छोटे-छोटे खिलौने मालूम होते थे। वही सब मै देख रहा था, कि भीषण शब्द के साथ वह घंटा बज उठा। आवाज से मीनार काप उठी—मेरे हाथ भी काप उठे। मैं जमीन पर बैठ गया। घटे की ध्वनि बन्द होने पर भी प्रतिध्वनि उस वक्त तक गू ज रही थी।

आज भी ठीक वैसा ही मालूम हो रहा है। घटा-ध्वनि तो नहीं है, परन्तु चारो ओर कोलाहल मच रहा है। एक अस्पष्ट शब्द की झंकार से कान भर रहा है। ललाट की नसे धक्-धक् कर रही हैं। छाया की भाति अपने चारों ओर मै देख रहा हू, असख्य नर-नारी हर्ष

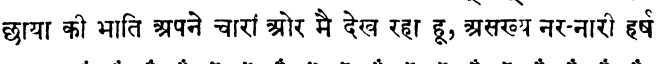

और कोलाहल करते हुए चल-फिर रहे हैं। वह ध्वनि उन्हीं की उल्लास-ध्वनि है न।

मिला-होटल के ऊचे गुम्बज की घड़ी भी दिखाई पड़ रही है। ग्लेदीग्रीव्ह के कठोर पत्थर की दीवारा की तरफ ही वह घड़ी देख रही है। कितने दिनों की पुरानी वह दीवार—वह पुरानी घड़ी—इसकी प्यारी सखी मालूम होती है।

जिस दिन किसी का जीवन फासी की डोर पकड़कर अज्ञात-लोक के विराट्-अन्धकार मे लटक पड़ता है, उस दिन ग्लेदी ग्रीव्ह के सब दरवाजों क सामने असख्य पहरेदारा की कुतूहल-दृष्टि जम जाती है। अभागे मृत्यु-पथ के यात्री ही उस व्यग्र-दृष्टि के लक्ष्य, दृष्टियों की आग मे ही अपनी सारी कहानी खत्म—कर देता है—और सध्या की झुरमुट मे होटल की वह ज्वलन्त घड़ी चन्द्रमा की भाति हसती रहती है।

एक बजकर पन्द्रह मिनट।

मेरी इस समय की हालत। सिर मे असहनीय यत्रणा। किसी ने मानों सिर मे आग लगा दी है। जब बैठता हू या उठ खड़ा होता हू, तो मालूम होता है कि सिर के अन्दर एक रुद्ध नदी का सोता कल-कल करता हुआ बह रहा है। मानों सिर के बाध को तोड़कर अभी बाहर निकल पडेगा।

एक आतक से अग में रोमाच हो रहा है। अगुली से कलम गिरना चाहती है। हाथ मे बिजली की तरग।

आखों में आसू डबडबा रहे हैं, मानो मै धूमाच्छन्न कमरे में बैठा हू। शरीर के जोड़ों में एक दर्द! अब केवल पौने तीन घटे बाकी

हैं—फिर तो बस हमेशा के लिए आराम मिल जायगा। वह एक तीव्र सुख होगा।

लोग कहते हैं—यन्त्रणा। वह कुछ भी नही है—विज्ञान मे ऐसा कौशल है कि मरते वक्त मुझे कुछ भी कष्ट न होगा। क्या सचमुच ?

छः घन्टे का यह कष्ट। इससे क्या मृत्यु का कष्ट अधिक होगा ? यह जो पल-पल बीत रहा है, मुझे ऐसा मालूम होता है कि वेदना की असख्य सीढियों को पार करता हुआ मै मृत्यु की ओर दौड़ रहा हू। यह वेदना—यह यन्त्रणा—असहनोय है।

फिर भी, यह कुछ नही है ?

नस-नस से खून मानों चू रहा है। छाती पर एक भारी पत्थर रख दिया गया है—ओह, सास बन्द हो रही है।

कैसी यन्त्रणा, कौन समझेगा—और, समझायेगा भी कौन ? फासी के बाद यदि वह धड़हीन सिर आकर उस वेदना को समझा सकता, तो विज्ञान की सब तारीफ ताक पर धरी रह जाती।

आखों को पलक मारने की भी फुर्सत न होगी—सब शेष हो जायगा ; एक मुहूर्त्त के अन्दर इतना बड़ा जीवन। वे कुतूहली दर्शक, ये अनगिनती राज सैनिक, ये भला उस यन्त्रणा को क्या समझे ? वह भीषण डोर एक मिनिट के अन्दर गले को दाब देगी—शरीर का सारा रक्त स्तम्भित होकर स्तब्ध हो जायगा। समुद्र की गति रुद्ध होने पर रोष से वह जैसा फूलने लगता है, बाधा पाकर सारा अन्तर बाहर निकलने के लिए एक विराट् द्वंद्व मचायेगा। हाय अभागे! उस भीषण द्वन्द्व मे ही सारा खेल खत्म हो जायगा। भीतर के साथ बाहर का प्रबल सग्राम—ओह, कैसा भयकर होगा ?

राजा की बात भी बार-बार याद आ जाती है। मन से यह चिन्ता किसी प्रकार भी दूर नहीं होती। दोनों कानों मे मानों कोई कह रहा है, "राजा! इस समय इसी शहर के एक बडे भारी महल मे सजे-सजाये कमरे के अन्दर वह बैठे हैं। मेरी ही भाति असख्य पहरेदार उनके दरवाजे पर खडे हुए पहरा दे रहे होंगे।" फ़र्क क्या है? वह प्रतिष्ठा के उच्च आसन पर और मैं बिलकुल नीचे, बस इतना ही फ़र्क है। उसके जीवन का प्रति मुहूर्त कैसा गरिमा-पूर्ण, महिमा मण्डित, यश और उल्लास से भरा-पूरा है। चारों ओर प्रेम, भक्ति, श्रद्धा का निर्झर झर रहा है। उनके सामने तीव्र स्वर शात हो जाता है, दर्पित मुण्ड नीचा हो जाता है। उनकी आखों के सामने स्वर्ण और गैष्य की सामग्री चकाचौध लगा देती है। सभासद-वेष्टित राजसिहासन पर बैठकर वह आज्ञा दे रहे हैं—सभ्रम लोग उसका पालन कर रहे हैं। कभी शिकार, कभी व्यसन, कभी नृत्य और कभी गीत। केवल मु ह से बात निकालने भर की देरी है कि असंख्य लोग विलास की सामग्री एकत्र करने के लिए तन्मय हो उठेगे!

राजा! वह भी मेरी ही भाति खून और मास का बना हुआ जीव है—क्षुद्र मनुष्य, यह राजा। फिर भी उसकी लेखनी के एक इशारे पर मेरी फासी रुक सकती है। जीवन, स्वाधीनता, ऐश्वर्य, गृह के सारे सुखों को पल भर के अन्दर प्राप्त कर सकता हू—और यह भी सुना है कि "हमारे राजा दयालु हैं," मगर फिर भी मेरी जान को बचाना उनकी दया का दुरुपयोग होगा। हाय रे दया की परिभाषा!!

: २२ :

तब आओ साहस ! मृत्यु के डर को भगाओ । काहे का डर ? काहे का आतङ्क ? आओ मृत्यु, मैं हसते हसते तुम्हारा स्वागत करू — खुशी से—तुम्हें आलिगन करू । आओ, तुम चाहे मित्र हो चाहे शत्रु, बस आ जाओ !

आखों को बन्द करते ही देखू गा, उज्ज्वल प्रकाश चारों ओर खिल रहा है । मेरी आत्मा उस प्रकाश के हौज मे स्नान करने को बढ रही है ! सिर के ऊपर उल्लास से भरा हुआ अनन्त आकाश पर मानों उस शुभ्र प्रकाश के शरीर पर काले तिल ही हों । मखमल की भाति कोमल आकाश पर मानो हीरे के टुकडे बिखरे हुए हैं । उस समय वे ऐसे न रहेंगे ।

या शायद, अभागा मैं यह देखू गा कि उस विराट् अन्धकार मे मेरा सिर-हीन धड़ पडा हुआ है और कब्र के चारों ओर भूत प्रेतो का उपद्रव मचा हुआ है । वह फासी की हवा से ससार के एक कोने का परदा फट गया है । दानवों का दल बड़े समारोह के साथ उसमे घुस रहा है । चारों ओर ककाल का पहाड़ लगा हुआ है, नीचे खून की नदी बह रही है । सिर के ऊपर आसमान में भी अधेरा है । तारे आग के परिन्दे बनकर इधर-उधर उड़ रहे हैं ।

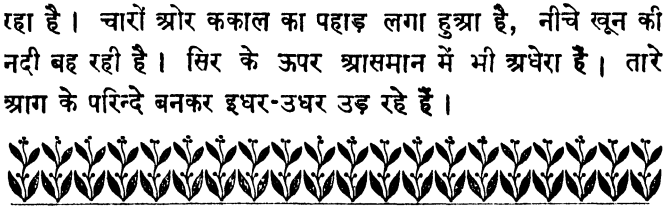

मेरे पहले जिन्होने फासी के तख्ते पर जान दी है, वे मेरा इन्तजार कर रहे हैं, उनकी छाया मैं अभी भी देख रहा हू। रक्त-हीन शीर्ण-देह, धसी हुई आखे, सूखा हुआ मुह--क्या ही भयानक है। प्रकाश और अधकार के बीच खडे होकर वे धीरे-धीरे कुछ कह रहे हैं। उनके मुख पर हसी का नाम तक भी नहीं है। है केवल एक आतङ्क—एक अधीर उद्वेग। कहीं कुछ नजर नहीं आता। मीला-होटल की वह निर्मम घड़ी मेरी ओर देखकर अट्टहास करती हुई मुझे अन्तिम समय की याद दिला रही है। ससार में कुछ भी नहीं है—रत्ती भर करुणा तक नहीं।

इसी तरह की बाते हृदय के भीतर द्वद्व मचा रही हैं। एक मिनिट को भी नही छोड़तीं।

हाय, क्या यह मृत्यु है? कौन है यह? आत्मा के साथ इसका ऐसा विरोध क्यों है? एक आघात से वह जब देह को धूल पर लिटा देती है—तब मन की यह चेतना, यह अनुभूति; यह प्रेम, स्नेह, दया, यह सर्वव्यापी चित्र इन सब को वह कहा उड़ा देती है? पृथ्वी—कठोर को क्या इतनी सी भी ममता नहीं है? क्या इसमे वह शक्ति नहीं है कि मृत्यु को जीत कर हाथ से बनाये हुए जीवों की रक्षा करे? मेरे भगवन्, तुम्हारी यह सृष्टि-लीला कैसी विचित्र है? कैसा निष्ठुर है यह रहस्य? कैसा निर्मम खेल है, यह!

: २३ :

एकबार निद्रा-देवी की आराधना करने के लिए बिस्तर पर लेट गया था।

सब खून मानो सिर के ऊपर आकर जम गया। जीवन मे यही मेरी अन्तिम निद्रा होगी।

स्वप्न देखा।

स्तब्ध गम्भीर रात। दो मित्रों के साथ बैठक मे बैठा था। बगलवाले कमरे में स्त्री सो रही है—मेरी उसकी छाती से सटकर पड़ी हुई है।

बहुत धीरे-धीरे बाते कर रहा था—कोई जग न जाय, डर न जाय। अचानक एक शब्द हुआ, और मैं चौक पड़ा। देखने के लिए उठा। अवश्य ही चोर आये हैं।

चारों ओर ढूढ डाला। कोई नही है—किसी का चिह्न तक नहीं।

चिमनी के पीछे वह क्या है। कौन?

एक नारी—रूखे बाल मुह के चारों ओर बिखरे हुए—मुखपर एक कठिन भाव! आखे उसकी बन्द थीं! मैंने पूछा, "तू कौन है?"

उसने कुछ जवाब न दिया। हम लोगों ने कहा—"जल्दी बता तू कौन है ?" फिर भी चुप। आख अभी भी वैसी ही बन्द। मित्र ने कहा—"उसके मु ह पर रोशनी डालो।" मैंने बत्ती उठाकर उस के मु ह की ओर की। फिर भी चुप। मैंने कहा—"बात क्यों नही करती ?" फिर भी अचचला ? हम लोग परेशान। राम कैसी आफत है यह !

मित्र ने कहा--"रोशनी को और पास लाओ।" मै बत्ती को बिलकुल आखों के पास ले गया। उसने आखे खोल दीं। ओह, कैसी तीव्र थी उसकी दृष्टि ! मैने आखे बन्द कर लीं। साथ ही आख मे कुछ जलन हुई। फिर आखे खोलकर देखा तो जेलखाना। मेरी शय्या के सामने आचार्य खडे हैं।

मैंने पूछा—"क्या मैं बहुत देर तक सोया हू ?" उन्होंने कहा—"हा, एक घण्टे सोये हो। तुम्हारी लड़की को मैं लाया हूं, मेरी को। देखोगे नहीं ? तुम्हारे जगाने की कोशिश उन्होंने की थी, जब तुम नही जगे, तब मुझे बुलाया है। तुम्हारी कन्या मेरी—"

मैं चिल्ला उठा—"मेरी। मेरी लड़की मेरी। कहा है वह ? जल्दी बतलाइए ! लाइए, उसे मेरी गोदी मे दीजिए, मैं उसे ज़रा छाती से लगा लू।"

: २४ :

मेरी ! उसका रंग गुलाब के फूल जैसा, अंगूर की तरह नरम उसके ओठ—अहा, मेरी प्यारी मेरी !

काली पोशाक में वह कैसी सुन्दर मालूम हो रही थी ! मैंने उसे अपनी गोद में उठा लिया, कपोलों पर हजार बार चुम्बन किया।

विस्मय के साथ वह मेरी ओर देख रही थी। आखों में वह कैसा भाव ! मानों अत्यन्त कातर है ! बीच-बीच में वह कमरे के एक कोने में खड़ी हुई आया की ओर देख रही थी। आया रो रही थी।

मेरी को पुचकार कर, मैंने उसे अपनी छाती पर दबा लिया। रुद्ध स्वर से मैंने कहा, "मेरी, मेरी प्यारी मेरी !"

अत्यन्त मृदु-भाव से मुझे एक धक्का देकर उसने अपना मुंह हटा लिया, और कहा, 'आह ! आप छोड़िए मुझे !"

'आप !'

करीब एक साल बाद यह साक्षात् ! इस एक वर्ष में मेरी मुझ को भूल गई। मेरी बातें, मेरा सुख, मेरा आदरभाव, सब उसके मन से कहां उड़ गये ! परन्तु इसमें उसका अपराध क्या ?

मेरी ये मूंछें, सिर में जटा के बाल, शीर्णमुख, कैदी की पोशाक, रुद्ध कण्ठ-स्वर—भला, वह मुझे कैसे पहचानेगी ?

जो मुझे याद रक्खेगी, यह सोचकर मैं कुछ शान्ति पा रहा था, वह भी मुझे भूल बैठी है ! हाय रे मेरे भाग्य !!

आज मै उसका 'बाबू' नही हू । अपनी बेटी के मु ह से मीठा-सम्बोधन, फूल की पखुड़ी की भाति उसके हास्यमय मुख मे वह मधुर सम्बोधन 'बाबू'—अहा, आज मै उससे भी वचित हू ।

कैसा दारुण अभिशाप है ।

इस समय जीवन के इस रोष-मुहूर्त्त मे एक बार, केवल एक बार, उस सम्बोधन के बदले, अपनी बेटी के मु ह से वह आह्वान यदि एक बार पल भर के लिए भी सुन लू, ता चालीस वर्ष का वह सुदीर्घ जीवन मैं हसते हुए विसजन कर दू ।

"मेरी !—" उसके दोनों हाथो को दबाकर कहा, मेरी प्यारी बेटी मेरी, क्या मुझे नहीं पहचानती ?"

अपनी तेज आखों को उठाकर, कुछ गुस्से से उसने कहा, "नहीं !"

मैंने कहा—"देखो, अच्छी तरह देखो, मैं कौन हू ।"

उसने कहा—"कौन हैं आप, मै क्या जानू । होगे कोई भले आदमी ।" कैसा अम्लान था उसका कण्ठ-स्वर ।

हाय, ससार में जिसकी जरा-सी हसी देखने के लिए मैं सब कुछ कर सकता हूं, उसी के मु ह से यह कैसी बात ? उसकी आखों मे यह कैसी दृष्टि ?

मैंने पूछा—"मेरी, तुम्हारा पिता है ?"

उसने कहा—"है । क्यों ?"

मैंने कहा—"कहा है, वह ?"

मेरी ओर देखकर उसने कहा—"वह, कहिए।"

हाय, मेरी प्यारी बेटी। हाय रे, शीर्ण पितृ-हृदय की व्याकुलता! मैंने फिर पूछा—"कहा है, वह?"

मेरी की आखे सजल हो गई। उसने रुद्ध कण्ठ से कहा—"स्वर्ग मे।"

मैंने कहा—"स्वर्ग मे। जानती हो मेरी, वह स्वर्ग कहा है? स्वर्ग का अर्थ क्या है?"

मेरी की आखो से आसू टपक रहे थे, मैने पुचकारा।

मैंने कहा—"मेरी, एक बार ईश्वर का स्मरण करो।"

उसने कहा—"नही, महाशय, दिन-दोपहर मे बिना काम उनको विरक्त नही करना चाहिए। ठीक सध्या के समय मैं प्रार्थना करू गी।"

मेरा चित्त व्याकुल हो रहा था! यह लड़की—यह मेरी—मेरी ही कन्या है। हाय, आज यह मेरी नही रही—मैं आज इसके पास से बहुत दूर हट गया हू। नही-नही,—जैसे भी हो इसे समझाऊगा कि मै ही उसका 'बाबू' हू। स्वर्ग मे नही, नरक मे नहीं, उसके सामने, इसी जेल के अन्दर। मै फासी के लिए बैठा हू।

मैंने कहा—"मेरी तुम पहचानती नहीं, मैं तुम्हारा पिता हू।"

मानों कुछ डाटकर उसने उत्तर दिया—"नही--"

मैने कहा—"प्यारी बेटी, क्यों मुझे भूल गई? देखो, अच्छी तरह देखो, वह घर पर गुलाब की क्यारियो के पास बैठकर मैं तुम्हें कहानिया सुनाता था—परी की कहानी—सियार की कहानी—"

मेरी के मुख को फिर मैंने छाती से लगा लिया।

मेरी ने कहा—"आह! छोड़ दो, लगती है।"

मैने उसको अपने घुटने पर बैठाकर पूछा—"पढ सकती हो ?"

"हा !"

एक अखबार खोलकर मैंने उसके सामने रक्खा। वह पढने लगी—"प्राण-दण्ड का मुलजिम—"

अकस्मात् मैंने कागज को छीन लिया। अखबार वह अपने साथ लाई थी। अखबारवालो ने मेरी फासी की सूचना बडे-बड़े अक्षरो मे छापी थी जिससे किसी की नजर उस पर से चूके नही और इतना बड़ा समारोह देखने के लिए दर्शकों का दल टूट पड़े।

अपने मन का भाव मै स्याही से लिखकर समझाने मे असमर्थ हू। यह सूक्ष्म मूर्ति देखकर, भय से मेरी रोने लगी। उसने कहा, "लाओ, मेरा कागज लाओ, मै जहाज बनाऊ गी।"

आया के हाथ मे अखबार को लौटाकर मैंने कहा, इसको लेती जाओ, और घर पर कहना ' ''।" इसके आगे कुछ कह न सका। क्या सन्देश भेजू। खिड़की के पास एक कुर्सी पर बैठ गया। आखों को अपने दोनो हाथो से ढक लिया !—सिर के रक्त का श्रोत भीषण रूप से नाच रहा था।

कहा हैं वे यमलोक के भयानक दूत ? आने दो, अब क्या है ! ससार मे मेरा कोई नही है—जीने की अब इच्छा भी नही है। जिस साकल मे मै इस ससार के साथ बधा हुआ था,—वह साकल टूट गई। फिर अब यह माया—ममता क्यो ?

———

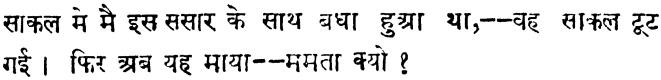

: २५ :

आचार्य के हृदय मे भी दया है, जेलर भी पत्थर का आदमी नहीं है। आया जब मेरी को ले जाने लगी, तो उनकी आखों से भी आसू की बूदे ढपक पड़ीं।

शेष—अब सब शेष। केवल साहस और बल। पथ पर वियुक्त जनता—फासी के तखते के निकट बढना—उसके बाद कहा रहेगा ससार— और, कहा रहूगा मै ?

कोई हसेगा, कोई आनन्द से ताली बजायेगा, कोई चिल्लाएगा। फिर भी कौन जानता है, इन दर्शकों मे भी कितने ही आदमी एक दिन मेरे ही पथ के पथिक बन सकते हैं। आज तो ये मेरा तमाशा देखने आये हैं, एक दिन इनमे से कोई-न-कोई या कितने ही दूसरों को तमाशा दिखाने जायगे—।

'मेरी प्यारी मेरी।'

नही, वह तो आया के साथ चली गई। गाड़ी की खिड़की मे से वह इस दर्शकों की भारी भीड़ को जरूर देखेगी। समझेगी कुछ तमाशा होगा। इस "भले आदमी" की उसे याद भी न रहेगी। वह नही जानेगी कि उसके इस "भले आदमी" को देखने के लिए ही इस

तमाशे का बन्दोबस्त किया गया है। और वह 'भला आदमी' दूसरा कोई नही है, उसी का वह 'स्वर्गवासी जादू' है।

उसके लिए मै लिख जाऊगा। एक दिन वह पढकर समझेगी। पन्द्रह वर्ष बाद तब वह आज के इस मुहूर्त की बात सोचकर रोवेगी।

हा, अपनी सारी कहानी उसके लिए लिख जाऊगा। सारी बाते लिख जाऊ गा—मेरा इतिहास—क्यों आज देश की छाती पर रक्ताक्षर से मेरा नाम लिखा जा रहा है, यह सब उस कहानी मे लिखू गा!

———

: २६ :

मीला-होटल के कमरे से—

मीला-होटल ! · · · मै अब यहा आ गया हू। वह स्थान—वह है मेरी इस खिडकी के नीचे। बहुत आदमी इकट्ठे हुए हैं। कोई चिल्ला रहा है, कोई सीटी बजा रहा है, कोई हस रहा है।

लाल रग के उस खम्भे को देखकर छाती काप रही है।

वे कौन जा रहे हैं ? शायद समय हो गया। अब विलब नही है। सारी देह काप रही है। छः घण्टे से—छ. महीने से जिस बात की चिन्ता लगातार कर रहा हू, वह मुहूर्त्त आ गया, परन्तु कितनी जल्दी !

एक छोटे कमरे मे लाकर उन्होंने मुझे खड़ा कर दिया। खिड़की के अन्दर से आस्मान नजर आ रहा था।—चारों ओर कुआ-सा है। मैं कुर्सी पर बैठ गया। कमरे मे और भी तीन-चार आदमी थे। आचार्य भी थे। सहसा मेरे बालों मे लोहे का ठण्डा स्पर्श ! कैंची का शब्द। बाल नीचे मेरे पैरों पर आ गिरे! आस-पास सबकी कानाफूसी! डाढी मू ड दी गई।

आख उठाकर देखा कागज और पेन्सिल लेकर एक आदमी

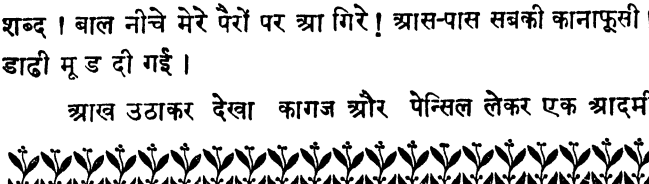

प्रश्न कर रहा है। समझा, अखबारों का प्रतिनिधि है! कल के अखबार के लिए "मैटर" इकट्ठा कर रहा है। अखबारवालों की चांदी है—खबर जबरदस्त है।

दो पहरेदारों ने आकर मेरा हाथ पकड़ा। मैं आचार्य के पीछे पीछे चला।

बाहर का दरवाजा खुल गया।

लोगों की भीड़ इकट्ठी थी। चारों ओर से आवाज आई 'वह, वह, वह है।' सिपाही मेरे चारों ओर चल रहे हैं। राजा के योग्य सम्मान से मुझे ले जाया जा रहा है।—वाह-वाह, खूब!

किसी ने कहा—"नमस्कार महाशय!" किसी और ने आवाज कसी, "आदाब अर्ज है।"

एक स्त्री ने कहा, "हाय, बेचारा!"

एक आदमी ने कहा, "टोपी खोल डालो, सम्मान दिखाओ।"

मुझे हंसी आई—हाय, ये टोपी ही खोल रहे हैं, मुझे सिर खोल देना पड़ेगा।

आचार्य के हाथ से 'क्रॉस' लेकर मैंने छाती से लगाया। आग्रह के साथ भक्ति-गद्गद् कण्ठ से मैंने कहा—"क्षमा करो भगवान्, तुम्हीं पाप-तारण हो—औरतों के मित्र हो!"

नारियों की करुण समवेदना के स्वर कान में आये। मेरी तरुण अवस्था देखकर वे मेरे लिए दुखी थीं।

सहसा मैं कांप उठा—सामने ही वह फांसी का तख्ता। टनन्-टनन् करके चार बज रहे हैं।